कला और बूढ़ा चाँद : एक आलोचनात्मक अध्ययन

(एम० फिल० की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक

डॉ० केदारनाथ सिंह

शोध-छात्र

इन्द्राज बहादुर सिंह

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा-संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067

1989

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

दिनांक : 20.7.89

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री इन्द्राज बहादुर सिंह द्वारा प्रस्तुत "कला और बुढ़ापा – एक आलोचनात्मक अध्ययन" शीर्षक लघु शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि यह लघु शोध प्रबन्ध श्री इन्द्राज बहादुर सिंह की मौलिक कृति है ।

अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067.

(केदारनाथ सिंह)
निदेशक
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067.

Gram : JAYENU Tel. : 667676, 667557 Telex : 031-4967 JNU IN

प्राक्कथन

छायावादी प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त की छायावाद के बाद की करीब सभी प्रमुख काव्य-धाराओं में उपस्थिति को देखा जा सकता है। उनकी काव्य-यात्रा इतनी लम्बी है कि उनके सम्पूर्ण कृतित्व का मूल्यांकन अपने आप में एक दुष्कर कार्य होगा और साथ ही तरह-तरह की चुनौतियों का सामना भी करना पड़ेगा। उन्होंने बहुत ज्यादा लिखा है साथ ही विचारों और भावों के स्तर पर तरह-तरह के प्रयोग भी किये हैं। दर्शन के प्रति उनके आकर्षण को सभी हिन्दी काव्य-प्रेमी जानते हैं। उनकी कविताओं में कल्पना के उर्ध्व-संवरण और साथ ही धरती के "अंधड़" को एक साथ देखा जा सकता है। इसीलिए बने बनाये या पूर्वाग्रह-पीड़ित दृष्टि से उनपर विचार करना बहुत ही असंगत होगा। वह सतत जागरूक कवि रहे हैं। प्रस्तुत विवेच्य काव्य-संग्रह उनकी इस जागरूकता को और भी अच्छी तरह से जाहिर करता है। प्रारम्भ में इस काव्य-संग्रह पर काम करने में थोड़ी हिचक महसूस हुई क्योंकि उस समय मुझे परवर्ती पन्त के काव्य के बारे में कोई ठोस जानकारी नहीं थी। हाँ, मेरे शोध-निर्देशक आदरणीय डा॰ केदारनाथ सिंह के दिशा-निर्देश से मुझमें इस काव्य-संग्रह के प्रति रुचि व उत्साह आया। दूसरे शब्दों में कहूँ तो यह उन्हीं के दिशा-निर्देश का फल है कि यह शोध-प्रबंध समय से पूरा हो सका।

इस "लघु शोध प्रबन्ध" को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है । प्रथम अध्याय "परिचय" शीर्षक के अन्तर्गत है । दूसरा अध्याय है — "कला और बूढ़ा चाँद" तथा पंत की पूर्ववर्ती काव्यकृतियाँ । तीसरा अध्याय है — कला और बूढ़ा चाँद का शिल्पगत सौन्दर्य । चौथा अध्याय है — कला और बूढ़ा चाँद तथा नयी कविता । पाँचवा अध्याय है —उपसंहार । वैसे इसमें "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का अध्ययन" नाम से एक अध्याय और जोड़ने की इच्छा थी किन्तु इससे यह "लघु शोध प्रबन्ध" अपने लघु रूप को छोड़ देता । इसलिए एक-एक कविताओं का अलग से विवेचन सम्भव न हो सका । वैसे "कला और बूढ़ा चाँद" का शिल्पगत सौन्दर्य" शीर्षक के अन्तर्गत इस कमी को पूरा करने की कोशिश की गयी है ।

प्रथम अध्याय में पन्त के कवि-व्यक्तित्व को दिखाया गया है जिससे पन्त के काव्य-विकास को उनके कवि-व्यक्तित्व के समक्ष रखकर देखा जा सके । प्रथम अध्याय में ही मैंने कुछ सूत्र और संकेत भी दे दिये हैं जिनसे इस काव्य-संग्रह के मूल्यांकन को विस्तार दिया गया है । दूसरे अध्याय में मैंने पन्त जी की पूर्ववर्ती काव्यकृतियों के बरक्स "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं पर विचार किया है । इसमें उन बातों को स्पष्ट किया गया है जिनसे यह कृति पन्त की अन्य काव्यकृतियों में अपना एक अलग महत्व रखती है ।

तीसरे अध्याय "कला और बूढ़ा चाँद" का शिल्पगत सौन्दर्य" में "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का विवेचन-विश्लेषण है । इसमें न केवल कविताओं का अध्ययन किया गया है अपितु उन मुद्दों पर भी चर्चा की गयी है जिनको लेकर इस कृति पर विवाद रहा है । चौथा अध्याय जिसमें "कला और बूढ़ा चाँद" तथा "नयी कविता" की चर्चा की गयी है, नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में इस काव्य-संग्रह के योगदान को दिखाता है । स्वयं पन्त जी "नयी कविता" के बारे में क्या सोचते थे तथा यह काव्य-संग्रह नयी कविता के अन्दर रखा जा सकता है या नहीं - इस पर भी विचार किया गया है ।

अन्तिम अध्याय है — "उपसंहार ।" उपसंहार, उपसंहार की ही तरह का होना चाहिए, इसलिए बहुत ही कम शब्दों में "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए इसे समाप्त किया गया है । इस लघु-शोध प्रबन्ध के "परिशिष्ट" शीर्षक के अन्तर्गत उन लेखकों और उनके ग्रन्थों का निर्देशन है जिनसे इस प्रबन्ध को तैयार करने में किसी भी प्रकार की सहायता मिली । इस सन्दर्भ में मैं उन सुधी विद्वानों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

अस्तु

इन्द्राज बहादुर सिंह

विषय - सूची

भूमिका	.....	क - ग
अध्याय - 1	.....	1 - 18
	"कला और बूढ़ा चाँद : एक आलोचनात्मक अध्ययन – परिचय	
अध्याय - 2	.....	19 - 63
	"कला और बूढ़ा चाँद" तथा पन्त की पूर्ववर्ती काव्यकृतियाँ ।	
अध्याय - 3	.....	64 - 93
	"कला और बूढ़ा चाँद" का शिल्पगत सौन्दर्य	
अध्याय - 4	.....	94 - 116
	"कला और बूढ़ा चाँद" तथा नयी कविता	
उपसंहार	.....	117 - 120
परिशिष्ट	.....	121 - 123

*****

अध्याय - 1

कला और बूढ़ा चाँद : एक आलोचनात्मक अध्ययन

परिचय : "कला और बूढ़ा चाँद" कविता-संग्रह सुमित्रानन्दन पंत की दूसरी कविताओं से बहुत दूर तक अलग एवं अपने में एक खास किस्म के वैशिष्ट्य को लेकर हमारे समक्ष आता है । यह इसलिए ही महत्वपूर्ण नहीं है कि पन्त जी को इसपर सन् 1961 का "साहित्य-अकादमी" पुरस्कार मिला, अपितु इसलिए भी कि यहाँ पर कवि ने काव्याभिव्यक्ति के लिए ऐसे माध्यम को स्वीकार किया, जिसका उपयोग पहले कभी नहीं किया था । ये कविताएँ जैसा कि पन्त जी ने ही लिखा है कि "रूपविधान की दृष्टि से पिछली रचनाओं से कुछ भिन्न हैं ।" इन कविताओं के बारे में एक बात और कही जाती है कि ये कविताएँ "सहज स्फुरण" से प्राप्त सत्यों पर आधारित है । चूंकि इनमें भाषा भावाभिव्यक्ति में असमर्थ रही है, इसलिए इन स्फुरणों की अभिव्यंजना कवि को प्रतीकों के माध्यम से करनी पड़ी । इनमें प्रतीकों की व्याख्या बहुत ही सरल एवं सशक्त ढंग से हुई है । प्रतीकों की अर्थगम्भीरता नित नये-नये प्रयोग के साथ-साथ बढ़ती जाती है । हमें यहाँ दर्शन के प्रति पन्त जी का "अद्भुत आकर्षण" नहीं दिखायी देता । इसी कारण ये कविताएँ

उनकी अन्य कविताओं की अपेक्षा न केवल शिल्प में अपितु भाव-बोध में भी अलग दिखायी देती है । जैसा कि यह एक मान्य तथ्य है कि पन्त जी हिन्दी खड़ी बोली काव्य की छायावादी धारा के प्रवर्तकों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखने के बावजूद भी छायावाद के बाद के काव्यान्दोलनों को न केवल प्रभावित करते हैं, अपितु उनसे प्रभावित भी होते है । अत: इस दृष्टि से भी इन कविताओं का महत्व बढ़ जाता है । पन्त जी के साथ एक बात और है, वह यह कि कविताओं के माध्यम से वह स्थायी और सार्वभौम तक पहुँचने की कोशिश करते हुए दिखायी देते है । उनकी कविताओं में निरन्तर विकास-मान चिन्तनधारा एवं गत्वरता का कारण कुछ हद तक यही स्थायी एवं सार्वभौम तक पहुँचने की ललक है । वैसे इसपर अन्य शीर्षकों के अन्तर्गत विचार करते हुए चर्चा की जायगी, अत: प्रसंगात् यहाँ केवल संकेत दे देना ही उचित है ।

किसी कवि को सामान्यत: उसकी कविता के माध्यम से जानने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व के निर्माण में अन्तर्निहित तत्व कविता के माध्यम से मुखर होते हैं । पन्त जी के संदर्भ में यह और भी प्रासंगिक लगता है क्योंकि उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी-कविता के उसके शैशव काल से लेकर अब तक के विकास को न केवल देखा है, अपितु उससे सामना भी किया है । वह हिन्दी के सर्वाधिक जीवन्त तथा जागरूक कवियों में से एक हैं । छायावाद से प्रगतिवाद का मार्ग प्रशस्त करने में उनकी विशिष्ट भूमिका तो है ही, साथ ही उसके बाद भी उनकी कविता अनेक मार्गों से होकर गुजरती रही है । उनकी कविताओं ने न केवल छायावाद के भावबोध और अभिव्यक्ति के सौंदर्य को महत्वपूर्ण स्वरूप प्रदान किया, बल्कि छायावाद के बाद भी वे अपनी निरन्तर गतिशीलता का परिचय देती हैं । इसका एक उदाहरण प्रतिपाद्य विवेच्य कविता-संग्रह "कला और बूढ़ा चाँद" भी है । चूंकि

मेरा विषय यहाँ "कला और बूढ़ा चाँद : एक आलोचनात्मक अध्ययन" है, अत: इस विवेचन में मूल रूप से विषय पर ही ध्यान दिया जायेगा क्योंकि यह मेरा "लघु शोध प्रबन्ध" है तथा इसकी अपेक्षाएं काफी सीमित हैं। विषयान्तर वहाँ हो सकता है जब कवि और विषय को एक दूसरे से चिन्तन एवं काव्य-विकास के क्षेत्र में जोड़ने की आवश्यकता की जरूरत दिखायी देगी। फिलहाल मैं पंत जी के जीवन और व्यक्तित्व पर कुछ पंक्तियों में प्रकाश डालने की कोशिश करूंगा क्योंकि किसी भी कवि की प्रारम्भिक जीवन की परिवेशगत परिस्थितियां उसके काव्य को बहुत दूर तक प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से पंत जी के बारे में तो यह और भी सच है। वैसे इस विवेच्य "काव्य-संग्रह" की कविताएं भी भावबोध के स्तर पर अपनी जड़ों की सूचना प्रारम्भिक पंत में देती हैं। यह अकारण नहीं है कि पन्त जी इन कविताओं को "रश्मिपदी काव्य" ऐसे समय कहते हैं जब स्वयं ही काव्यविकास के अनेक प्रयोगों से गुजर चुके होते हैं। यह भी अकारण नहीं है कि जहाँ "क्रम" या "अनुक्रम" के अन्तर्गत कविताओं की संख्या गिनायी जाती है, वहीं वह "रश्मिव्यूह" शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। अत: अब आगे की चर्चा पंत जी के प्रारम्भिक जीवन के सन्दर्भ में कर लेना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत जी का जन्म 20 मई सन् 1900 को अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक स्थान में हुआ था। वह अपने चार भाइयों और चार बहनों में सबसे छोटे थे। उनके घर में उनका नाम गोसाईंदत्त पंत रखा गया था (महादेवी वर्मा ने "पथ के साथी" में "गोपालदत्त" नाम बताया है जो गलत है) किन्तु पंत जी ने स्वयं यह नाम बदलकर सुमित्रानन्दन पंत कर लिया। उनकी माता का स्वर्गवास उनके जन्म लेते ही हो गया था। उनके पिता श्री गंगादत्त पंत कौसानी की एक चाय-रियासत के प्रबन्धक थे। उनकी जन्म-भूमि कौसानी "कूर्मांचल की एक विशिष्ट सौंदर्य स्थली" है।

इसकी तुलना गांधी जी स्विट्जरलैण्ड से करते हैं । स्वाभाविक रूप से यह "सौंदर्य-स्थली" पंत जी के प्रारम्भिक कवि को तो प्रभावित करती ही है, साथ ही अन्त तक वे शायद इसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते है । उनके उमर कौसानी के बाद अल्मोड़ा का प्रभाव पड़ता है । यहां उन्हें नगर के सुख-वैभव का जीवन प्राप्त होता है । जहां कौसानी में उनका मन "प्रकृति क्रोड़ में छिप, क्रीड़ाप्रिय तृण तरू की बातें सुनता" था, वहीं अल्मोड़ा में, प्रकृति की एकान्त छाया में बसन्त भी कुछ कम उन्हें नहीं आकर्षित करता । यहां भी "कुसुमित घाटी" है जो "चित्र शलभ-सी पंख खोल उड़ने को" है । शुरू में अल्मोड़ा के नागरिक वातावरण में उनको "ग्राम-जीवन की सीमित रूचियाँ तथा मनोविन्यास की कमियाँ" खटकती जरूर है, पर धीरे-धीरे अल्मोड़े में उनके पिता की "विशाल सुन्दर अट्टालिका" उनके मन में "एक विशेष प्रकार के गौरव का" अनुभव कराती है । इस प्रकार उनके किशोर कवि-जीवन के प्रारम्भिक वर्ष कौसानी और अल्मोड़े में प्रकृति की एकान्त छाया में व्यतीत होते हैं ।

बचपन में पंत जी को सुन्दर वस्त्र पहनने का भी शौक था । जैसा उन्होंने स्वयं ही "साठ वर्ष और अन्य निबन्ध" नामक पुस्तक में लिखा है कि "हाईस्कूल तक और पीछे भी, मैंने इतने और अपने मन के इतने नमूनों के कपड़े पहने हैं कि अपने को किसी प्रकार भी असुन्दर देखने की कल्पना तब मेरा मन नहीं सहन कर सकता था ।" कवि कर्म को अपनाने का निर्णय वह सातवीं-आठवीं कक्षा में लेते हैं तथा नैपोलियन के युवावस्था के चित्र को देखकर लम्बे घुंघराले बाल रखना आरम्भ कर देते है । बाद में वह टैगोर के चित्र को देखकर कवि के साथ केशों का सम्बन्ध जोड़ते है । साथ ही स्वामी सत्यदेव जी के विचारों तथा भाषणों और उनके काव्यपाठ के ढंग से उनके मन में यह बात बैठ जाती है कि कविता को गेय होना चाहिए । बचपन में

ही उनकी साहित्यिक रुचि का पता इसी से लगाया जा सकता है कि वे छठीं कक्षा में पढ़ते हुए "हार" नामक एक खिलौना उपन्यास लिख डालते है । कविता का प्रयोग वह सर्वप्रथम पत्र लिखते हुए करते है । उन्होंने लिखा है कि "अपनी बहन से अपने छन्दबद्ध पत्रों की प्रशंसा सुनकर मैं बड़ा प्रोत्साहित होता था ।"

पन्त जी उस समय के साहित्यिक पत्रों में भी अपने बचपन से ही रचनाएं भेजना आरम्भ कर देते है । वे इन रचनाओं को अपनी छन्द-साधना के प्रयोग कहते है । उस काल की उनकी रचनाओं पर मैथिलीशरण गुप्त जी का तथा हरिऔध जी का प्रभाव शब्द-योजना की दृष्टि से लक्षित होता है, इसे वह स्वयं स्वीकार करते है । इसका कारण यह है कि उस समय "'भारत भारती', 'जयद्रथ-बध', 'रंग में भंग', 'प्रियप्रवास', 'कविता कलाप' आदि काव्यग्रन्थ, रत्नाकर कार्यालय के अनेक उपन्यास "छत्रसाल" आदि तथा कहानी संग्रह "गल्प-गुच्छ" आदि का तथा बंकिम बाबू के अनुवादों का अल्मोड़े में" उनके अनुसार बहुत ही प्रचार था । वैसे उनके कुछ विषयों में नवीनता भी दिखायी देती है । जैसा कि वह स्वयं लिखते हैं कि "तम्बाकू का धुंआ", "कागज के फूल", "गिरजे का घण्टा" आदि अनेक रचनाओं में शब्द-योजना की दृष्टि से, संस्कार तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से, परिपक्वता भले ही न रही हो, पर भावना की दृष्टि से उनमें मौलिकता दृष्टिगोचर होती है ।" विशेषकर "तम्बाकू का धुंआ" शीर्षक कविता के संदर्भ में उनका कहना है कि "उन दिनों के भाषणों में जो स्वाधीनता की भावना मिलती थी उसी की प्रतिध्वनि उक्त रचना में है ।" "कागज के फूल" के संदर्भ में उनका कहना है कि - "सत्य से कब तक मुख मोड़ा जाएगा ? अवास्तविक रूप रंग से कब तक धोखा दिया जा सकता है ? पूजा गुण की होती है न कि गन्ध-मधुहीन कागज के फूलों जैसे मनुष्य की । वस्तुत: किसी को आदर तभी मिलेगा जब उसमें कुछ गुण हो ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी पर बचपन में ही काव्य-संस्कार पड़ना आरम्भ हो जाता है। इसके अलावा वह शब्दों को जानने और पहचानने पर भी विशेष ध्यान देते हैं। इसीलिए उनके एक अध्यापक उन्हें "मशीनरी आफ वर्ड्स" कहते हैं। सहपाठी लड़के उन्हें "शुगरकेन" कहते हैं क्योंकि उनके स्वभाव का "विनम्र हँसमुख मौन" उन्हें पसन्द नहीं। उनका बचपन सुनहली, सुखद स्मृतियों का ढेर है। यहाँ किसी प्रकार का अभाव नहीं, किसी प्रकार का कष्ट नहीं और न ही कोई सामाजिक संघर्ष का चिन्ह, अपितु निश्चित ढर्रे में चलता हुआ बचपन, निश्चित परिवेश का सुखद एवं कोमल प्रभाव ग्रहण करता है। बाद में यह उनके व्यक्तित्व का भी एक अंग बन जाता है।

यह तो हुआ सन् 1918 से पहले के पंत का परिचय। अब मैं अगली पंक्तियों में कुछ ऐसी बातों का जिक्र करूँगा जो न केवल पंत जी के व्यक्तित्व अपितु काव्यप्रतिभा के विकास में भी योगदान देती हैं। पन्त जी लिखते हैं कि "मेरी काव्यप्रतिभा का सर्वाधिक विकास सन् 1919 से '29 के दशक में हुआ जब मैं प्रयाग म्योर सेन्ट्रल कालेज में विद्याध्ययन के लिए गया। सन् '21 में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में मैंने उनके आह्वान पर कालेज छोड़ कर छात्र-जीवन को तिलांजलि दे दी और तब से स्वतन्त्र रूप से अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला साहित्य का अध्ययन करने लगा। इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजी साहित्य के गम्भीर पठन तथा कालिदास आदि संस्कृत कवियों के अधिकाधिक सम्पर्क में आने से मुझे अपनी काव्य-चेतना, भाव-बोध तथा कला-शिल्प सम्बन्धी दृष्टि के विकास में अभूतपूर्व सहायता मिली और इस समय की मेरी रचनाओं ने जो सन् '26 में "पल्लव" नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुईं, हिन्दी कवियों में मुझे अपने विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना दिया"[1]। वैसे जहाँ तक पंत जी में काव्य प्रतिभा के विकास की बात

---

1. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध, श्री सुमित्रानन्दन पंत, पृ०-55.

है, तो यह उनके बनारस प्रवास के समय में ही व्यापक रूप से आयी । वह सन् 1918 में अपने मझले भाई के साथ शिक्षा प्राप्त करने के लिए बनारस गये, जहाँ उन्हें बाहरी दृश्यों की रमणीयता का अभाव तो मिला किन्तु अध्ययन के सुख से वे वंचित नहीं हुए । यहाँ उन्होंने हिन्दी की रीतिकालीन कविताओं तथा बंगला-कविताओं को विशेष रूप से पढ़ा । अपने अध्ययन तथा काव्यबोध के संदर्भ में पंत जी अल्मोड़े व बनारस की तुलना करते हुए लिखते हैं कि — "अल्मोड़े में मेरा अध्ययन विशेषकर द्विवेदी कालीन कवियों तक ही सीमित था, जिनकी तुलना में रीतिकाव्य के लघु-पद-रचना माधुर्य ने मेरी काव्यभाषा सम्बन्धी धारणा को अत्यन्त प्रभावित किया ।" आगे पुन: लिखते है कि —श्रीमती नायडू की शब्द-योजना तथा रवीन्द्र की कल्पना, सौंदर्य-बोध तथा उनकी रचनाओं में निहित असीम के स्पर्श ने मेरे मन को प्रभूत रूप से अभिभूत किया । इन कवियों से कल्पना तथा सौंदर्य के पंख लेकर मेरा मन भीतर-ही-भीतर किसी नवीन अनुभूति के भावना-लोक में उड़ जाने के अविराम प्रयत्न में जैसे व्यग्र रहता था । मुझे स्मरण है कि मैं अपने लम्बे कमरे में अथवा सामने की एकान्त छत पर अनमने चित्त से घूमता हुआ अपने मन की मूक एकाग्रता में कविता की उस सौंदर्य और रहस्य भरी स्वप्न-भूमि का साक्षात्कार करना चाहता था, जिसकी झाँकियाँ मुझे श्रीमती नायडू तथा कवीन्द्र-रवीन्द्र की रचनाओं में मिलती थी और जिसे वाणी देने के लिए मेरे भीतर व्यंजना की पृष्ठभूमि रीतिकाल तथा द्विवेदी-युग के कवियों के रसबोध तथा युगबोध से भरी मधुर जाग्रत रचनाएं अज्ञात रूप से निर्मित कर रही थीं ।" [2]

एक अन्य स्थान पर स्मृतियों के गर्भ में जाकर पंत जी अपने काव्य-जीवन पर दृष्टिपात करते हुए प्रकृति की महत्ता को भी उजागर करते हैं जो

---

2. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध, पृ.-21, श्री सुमित्रानन्दन पंत .

उन्हें कौसानी व अल्मोड़े में अभिभूत किये थी तथा जिसका उनके काव्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । दूसरे शब्दों में कहें तो यह उनकी कविता की जड़ है । वह लिखते हैं — "अपने काव्य-जीवन पर दृष्टिपात करने पर मेरे भीतर यह बात स्पष्ट हो उठती है कि मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ । मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे, जिन्होंने मुझे कवि-कर्म करने की प्रेरणा दी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत-प्रदेश की दिगन्त-व्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की, जिसने छुटपन ही से अपने सम्हले एकान्त में एकाग्र तन्मयता के रश्मि-दोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ जनपाखियों के साथ बोलना-कुहुकना सिखलाया । प्रकृति निरीक्षण और प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोघ सान्त्वना मिली है ।"[3]

पन्त जी ने जब कविता लिखना आरम्भ किया, तब वह यह नहीं जानते थे कि कविता किस उद्देश्य से लिखी जाती है । न तो वह उन शक्तियों ही से परिचित थे जो उस समय हिन्दी काव्य-जगत् में सक्रिय थीं । उन्होंने लिखा है कि - "जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है, उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने मेरे हृदय को अपने सौंदर्य से स्पर्श किया और उसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी । उसके प्रकाश में मैं भी अपने भीतर बाहर अपनी रुचि के अनुकूल काव्य के उपादानों का चयन एवं संग्रह करने लगा ।"[4] पुन: आगे पन्त जी यह भी स्पष्ट करते है कि - "यह ठीक है कि दीपशिखा जैसे तद्वत दूसरी दीपशिखा को जन्म देती है, उसी प्रकार पिछली पीढ़ी की

---

3. सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-286, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना ।
4. वही,

काव्यचेतना मेरे भीतर ज्यों की त्यों नहीं उतर आयी । मेरे मन ने अपनी रुचि के अनुरूप उसका संस्कार कर उसमें अपनेपन की छाप लगा दी ।" [5]

पन्त जी ने कला-शिल्प सम्बन्धी प्रेरणा मुख्यत: अँगरेजी के कवियों से ली और रवीन्द्रनाथ तथा शैली से उनमें भावना सम्बन्धी उद्गार आया । वह द्विवेदी-युग की कविता के रूप-विधान तथा भाव-सम्पदा दोनों से असहमति व्यक्त करते हैं । कीट्स शैली तथा वर्ड्सवर्थ उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं । उन्होंने लिखा है कि — "कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्ड्सवर्थ के प्राँजल प्रकृति-प्रेम, कॉलरिज की अपसाधारणता तथा टेनिसन के ध्वनि-बोध ने मेरे कविता सम्बन्धी रूप-विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया । इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी-काव्य में उतारने के लिए मेरा कलाकार भीतर ही भीतर प्रयत्न करता रहा । काव्य-संगीत में व्यंजनों की योजना से शक्ति या चित्रात्मकता और स्वरों की सहायता से सूक्ष्मता एवं मार्मिकता आती है, इसका ज्ञान मुझे अँगरेजी कवियों के रूप-शिल्प के बोध से ही प्राप्त हुआ । रीतिकाव्य में अनियंत्रित अनुप्रासों की पुनरुक्ति केवल एक शाब्दिक चमत्कार बनकर रह जाती है । अनुप्रासों के विशिष्ट संयमित प्रयोग से किस प्रकार भावनाओं की व्यंजना अधिक प्रेषणीय बन सकती है, यह मैंने अँगरेजी-काव्य के अध्ययन से ही सीखा ।" [6]

इस प्रकार पन्त जी द्वारा स्वयं अपने ही संदर्भ में कही हुई ये बातें उनके कवि-व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग देने वाले कारकों की तरफ इंगित करती हैं । ऐसा कवि जिसने जिन्दगी में भौतिक रूप से कुछ पाने के लिए जिस संघर्ष की आवश्यकता होती है, उससे अछूता रहा, साथ ही बचपन तथा किशोरावस्था के बाल-चापल्य में आपसी "तूं-तूं मैं-मैं" खेल-खेल में हुए संघर्ष

---

5. पंत ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-286, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना ।
6. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध, पृ.-24,25.

की जगह अपनी एक अलग एकान्त दुनिया में निवास करते हुए जीवन और समाज के सन्दर्भ में सोचता है और उसकी सोच कुछ वायवीय हो जाती है, तो ठीक ही है । एक बात और महत्वपूर्ण है कि पन्त जी की सम्पूर्ण कविताओं को एक निश्चित ढाँचे में रखकर नहीं देखा जा सकता । शायद इसलिए भी पन्त जी इस विवेच्य काव्य-संग्रह की कविताओं को अलग करके देखने की बात करते हैं ।

हरिवंशराय बच्चन ने उनको "कवियों में सौम्य पन्त" कहा है क्यों कि उनके "घुंघराले रेशम के-से लम्बे-लम्बे बाल, स्वच्छ एवं स्निग्ध आँखें, गम्भीर एवं सरल मुखाकृति आकर्षण के साधन हैं । उनकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी है । वे जनभीरु हैं और वे बोलते बहुत कम हैं ।" [7] संगीत का भी पंत जी ने ज्ञान प्राप्त किया था । अपने काव्यपाठ के समय वह श्रोताओं को तन्मय कर देते थे । पंडित शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि — "पन्त के काव्यपाठ में चित्र और संगीत है । उंगलियों के इंगित से भाव को आकार तथा सुकोमल संगीत से रस को उसकी आत्मा दे देते हैं । पंत जी वाद्य-कुशल भी हैं । कविता और वायलिन उनकी एकान्त संगिनी है । उनके स्वर में जो मोहिनी है, वह अंग-अंग का मन छू लेती है । श्रोता स्वप्नाविष्ट हो जाता है ।"[8] इसमें कोई संदेह नहीं कि पंत जी ने कविता को जो स्निग्ध एवं सुमधुर रूप देने की कोशिश की वह उनके ही वश का काम था । विश्वंभर मानव का यह कहना सच ही है कि — जो व्यक्ति शरीर मन बुद्धि और आत्मा से पूर्ण सुन्दर है, उसका नाम पंत है ।

पन्त जी "ऋता" नामक कविताओं के संग्रह की भूमिका में, जिसका प्रथम संस्करण सन् 1971 में निकला, लिखते हैं कि - "प्रारम्भ में मेरी रचनाएं

---

7. पंत : छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व - लेखक निट्ठान एन.पी. कुट्टन पिल्लै एम.ओ.एल., पृ.-15.
8. ज्योति विहंग - पं.- शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ.-45.

मेरी काव्य-चेतना की प्रतिछवि के रूप में प्रकट हुई और आज मैं अपनी रचनाओं में सार्थकता का बोध भी करता हूँ।"[9] तात्पर्य यह कि प्रारम्भिक रचनाएँ भावोच्छ्वास की कविताएँ थीं। तथा विचार तत्व बाद में आया। उनमें रागात्मकता थी तथा सोच का गहरा स्तर नहीं था। यहाँ ध्यातव्य है कि छायावाद के पूर्व का काल भाषागत विद्रोह का काल था क्योंकि भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में कविताएँ लिखी जा रही थीं, किन्तु ब्रजभाषा को पूरी तरह से नकारा नहीं गया था। बावजूद इसके खड़ीबोली कविता में परिपक्वता छायावाद के काल में ही आयी। दूधनाथ सिंह ने "तारापथ" नाम से पंत की कविताओं के संकलन की भूमिका स्वरूप "सम्पूर्णता का कवि" नामक लेख में लिखा है कि - "भाषागत विद्रोह की जितनी गहरी चेतना और आवश्यकता पूर्व छायावादी कवि को थी, वैसी हिन्दी कविता के इतिहास में और कहीं नहीं मिलेगी। उसके पीछे एक कारण था - एक सर्वस्वीकृत काव्यभाषा (ब्रजभाषा) का परित्याग करके एक नवविकसित बोली का कविता के रूप में प्रयोग। निश्चय ही इस विकलता और चुनौती के पीछे ब्रजभाषा का भयावह काव्यरूढ़ियों में फँस जाना और दूसरी ओर बदली हुई राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और व्यक्ति-चेतना की परिस्थितियाँ थीं।"[10]

पंत जी की काव्यानुभूति की बनावट द्विवेदी युग से प्रगति की थी। उनके सामने ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली कविता का विवाद मुँह बाये इस तरह से खड़ा नहीं था जैसा द्विवेदीयुगीन कवियों के समय यह वर्तमान था। साथ ही जिस ऐतिहासिक समय में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ देश को प्रभावित कर रही थीं, उसमें भी छायावाद का आना अप्रत्याशित

---

9. स्मृति कविता संग्रह, पन्त जी द्वारा संकलित, पृ.-11.
10. तारापथ, संपादक दूधनाथ सिंह, पृ.-15.

नहीं कहा जायेगा । अत: तत्कालीन देश-काल परिस्थिति में भी पन्त की काव्यानुभूति की बनावट की जड़ें है ।

इन उपर्युक्त बातों के अलावा मैं यहाँ पंत जी से सम्बन्धित कुछ और बातों पर भी विचार कर लेना आवश्यक समझता हूँ । पहली बात तो यह कि पंत जी के सन्दर्भ में कई आलोचकों ने कहा है कि वे उस समय के कुछेक दार्शनिक विचारकों के विचारों की कार्बनकापी भी अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते रहे हैं । विशेष रूप से इस सन्दर्भ में श्रीअरबिन्द का नाम लिया जाता है । वैसे यह एक तथ्य है कि हिन्दी के जिन कवियों ने श्री अरबिन्द के विचार-दर्शन को ग्रहण कर काव्य-रचना की कोशिश की है, उनमें पंत जी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है । उन्होंने इस बात को खुले रूप से स्वीकार भी किया है । उनके अनुसार अरबिन्द-दर्शन परिपूर्ण एवं संतुलित अन्तर्दृष्टि का दर्शन है । उत्तरा की भूमिका में वह लिखते है कि - "श्री अरबिन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ । उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ । उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतल-स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन-दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धिग्राह्य सत्य, नवीन ऐश्वर्य महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे कहीं देखने को नहीं मिला । विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरबिन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ । उनके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है । उनके दान के बिना शायद भूतविज्ञान का बड़े-से-बड़ा दान भी जीवन्मृत मानवजाति के भविष्य के लिए आत्मपराजय तथा अशान्ति का ही वाहक बन जाता । मैं नहीं कह सकता संसार के मनीषी तथा लोकनायक श्री अरबिन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवनदृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान उनके लिए कब क्षेत्र बनाएँगे ।"[11]

---

11. उत्तरा भूमिका, पृ.-19-20.

इस प्रकार उनका यह एक ही उद्धरण इस बात को जाहिर करता है कि पन्त जी अरबिन्द दर्शन से बहुत ही अधिक प्रभावित थे । गांधी, मार्क्स, कवीन्द्र रवीन्द, विवेकानन्द आदि महापुरुषों का भी उनके ऊपर प्रभाव पड़ा है । किन्तु श्री अरबिन्द का प्रभाव उनकी कविताओं में एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ देखा जा सकता है । जब उनको बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी, तब वह अरबिन्द के विचारों के नजदीक गये । यह सन् 1940 से 1947 के बीच का समय था ।

उनकी "ग्राम्या" के प्रकाशित होते ही अर्थात् सन् 1940 के बाद पन्त जी के जीवन में एक प्रकार की वैचारिक उथल-पुथल होती है जिसका उनके स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है । इसके कारण के संदर्भ में पंत जी लिखते हैं कि - "मेरी पिछली मान्यताएं भीतर ही भीतर ध्वस्त हो चुकी थीं और नवीन प्रेरणाएं उदय हो रही थीं, आगे पुन: वह लिखते है कि - "मेरी अस्वस्थता का कारण एक प्रकार से मेरी मन:क्लान्ति भी थी ।"[12] इसी समय उनका श्री अरबिन्द के "भागवत जीवन" (दी लाइफ डिवाइन) से परिचय हुआ । इसके बाद उन्होंने पांडिचेरी में श्रीअरबिन्द के दर्शन किये तथा अरबिन्द आश्रम के निकट सम्पर्क में भी आये । सन् 1940 से 1947 तक उनकी लेखनी बन्द रहती है । इसके बाद स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल, खादी के फूल, और उत्तरा आदि रचनाएं आती है । उन्होंने "उत्तरा" की भूमिका में "स्वर्णकिरण" स्वर्णधूलि और उत्तरा पर अरबिन्द दर्शन से प्रभाव को स्वीकार किया है । उन्होंने लिखा - "श्री अरबिन्द आश्रम के योगमुक्त (अंत: संगठित) वातावरण के प्रभाव से उर्ध्व मान्यताओं सम्बन्धी मेरी अनेक शकाएं दूर हुई है । "स्वर्ण किरण" और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव

---

12. "उत्तरा" - सुमित्रानन्दन पंत, पृ.-21, प्रस्तावना.

मेरी सीमाओं के भीतर किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है ।"[13] सीमाओं से यहाँ पन्त जी का तात्पर्य शायद अपनी व्यक्तिगत रुचियों एवं प्रवृत्तियों से है जिसके भीतर ही वह प्रभाव को आत्मसात करते हैं । लेकिन कुछ आलोचकों ने तो पंत जी के "स्वर्ण-काव्य" को अरबिन्द-दर्शन का "उल्था मात्र" कह दिया है ।

सन् 1958 में प्रकाशित "चिदम्बरा" (इस काव्य-संग्रह पर "भारतीय ज्ञानपीठ" द्वारा प्रवर्तित देश का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार पंत जी को 19 दिसम्बर 1969 के दिन दिल्ली में दिया गया । जिसमें युगवाणी से लेकर "अतिमा" तक की रचनाओं का संचयन है ।) की भूमिका में पंत जी ने श्री अरबिन्द के प्रभाव को पुन: स्वीकार किया है । उनका कथन है – "मैं हिमालय तथा कूर्माचल के प्राकृतिक ऐश्वर्य से उसी प्रकार किशोरावस्था में प्रभावित हुआ हूँ, जिस प्रकार युवावस्था में गांधी जी तथा मार्क्स से अथवा मध्यवय में श्री अरबिन्द के दर्शन तथा व्यक्तित्व से ।"[14] पूर्वोक्त प्रभावों की दिशा और आयाम का उल्लेख करते हुए पंत जी ने आगे लिखा है – "युवावस्था के आरम्भ में रवीन्द्रनाथ तथा औजी कवियों ने भी मेरी कलारुचि का संस्कार किया है, किन्तु कलारुचि एवं सौंदर्यबोध से भी अधिक मूल्यवान जो इस युग के लिए नवीन भाववैतन्य, नवीन सामाजिकता तथा नवीन मानवता का बोध है, वह मुझमें गांधी, मार्क्स तथा श्री अरबिन्द के सम्पर्क से विकसित हुआ ।"[15] "लोकायतन" महाकाव्य का श्रीगणेश 8 अक्तूबर सन् 1959 को हुआ तथा 8 अक्तूबर सन् 1963 को यह पूरा हुआ । इसमें श्री अरबिन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव पूरी तरह से स्पष्ट है ।

---

13. "उत्तरा" - प्रस्तावना, पृ.-22.
14. शिल्प और दर्शन में संगृहीत "चिदम्बरा" की भूमिका, पृ.-118.
15. वही, पृ.-110.

"शिल्प और दर्शन" में संगृहीत "आधुनिक कवि भाग-2" की भूमिका में पन्त जी ने अपने संदर्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है। उनका कहना है कि - "वे आध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शनों से प्रभावित हुए है।" "वह दोनों दर्शनों" के "लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष को ही ग्राह्य करते हैं। यही कारण है कि उन्हें पश्चिम के ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन में किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा।"[16] उनकी आध्यात्मिकता केवल कविताओं में ही नहीं दिखायी देती, अपितु उनके गद्य का भी मूल स्वर आध्यात्मवादी है। न केवल अपने काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं अपितु सन् 1936 में प्रकाशित "पाँच कहानियाँ" तथा यदा कदा लिखे अनेक लेखों में उन्होंने अपने विचार को आध्यात्मिकता के धरातल पर उभारने की कोशिश की है। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि पन्त जी को अरबिन्द के अलावा अन्य सभी चिन्तकों के जीवन-दर्शन एकांगी दिखायी देते है। उन्हें गांधीवाद में वैज्ञानिक यथार्थवाद के परिपाक का अभाव दिखायी पड़ता है। उनके लिए यह दर्शन मुख्यत: दार्शनिक और आध्यात्मिक आदर्शवाद है। स्वामी विवेकानन्द के विचारों में उन्हें केवल एक उन्नत आध्यात्मिक व्यक्तित्व की कल्पना का आभास मिलता है तथा रवीन्द्रनाथ में भी उन्हें कमी दिखायी पड़ती है। किन्तु महत्वपूर्ण है कि इन सबका समन्वय उन्हें अरबिन्द के "लाइफ डिवाइन" में मिलता है। इस पुस्तक के संदर्भ में पंत जी लिखते है कि - "एक प्रकार से मैं पहला ही भाग पढ़कर अपनी कल्पना की सहायता से श्री अरबिन्द के दर्शन का पूर्ण आभास पा गया। अपने अनेक विश्वासों का मुझे श्री अरबिन्द-दर्शन में समर्थन मिलने से मेरे मन में मानव-जीवन के भविष्य के संबंध में एक नई आशा तथा प्रेरणा का संचार होने लगा।"[17]

---

16. "शिल्प और दर्शन" मे संगृहीत, आधुनिक कवि, भाग-2 की भूमिका, पृ. 53.
17. साठ वर्ष एक रेखांकन, पंत, पृ.-64.

ऊपर की पंक्तियों में थोड़ा विस्तार से अरबिन्द-दर्शन की चर्चा करने की वजह यहाँ यह है कि "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं में भी न केवल आध्यात्मिकता अपितु अरबिन्द-दर्शन के प्रभाव की चर्चा की जाती है । इस कविता-संग्रह की कविताओं में बहुत से शब्द ऐसे मिलेंगे जो अरबिन्द की दार्शनिक शब्दावली में वर्तमान हैं । इसीलिए कुछेक सुधी खोजियों ने इन कविताओं में भी विभिन्न प्रतीकों के अवगुण्ठन के नीचे से न केवल आध्यात्मिकता की खोज की है, अपितु यह भी सिद्ध किया है कि पन्त जी यहाँ भी अरबिन्द दर्शन से पूर्णत: प्रभाव ग्रहण करते हैं । मैं यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जब पन्त जी यह कहते हैं कि "ये कविताएँ उनकी अन्य कविताओं से भिन्न प्रकार की हैं" तो इसका कुछ मतलब जरूर है । आखिर पंत जी को यह कहने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी ? अपनी बात को तर्कसंगत बनाने के लिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है क्योंकि उनके अन्य कविता-संग्रहों पर उन्होंने दर्शन में निहित विचार तत्व का आरोप अवश्य लगाया है किन्तु इन कविताओं के सम्बन्ध में उनकी राय बिल्कुल अलग है । आचार्य वाजपेयी इस कविता संग्रह की कविताओं को पंत जी की सुप्रसिद्ध कविता "परिवर्तन" के समतुल्य देखते हैं । आचार्य वाजपेयी जी कहते हैं कि - "परिवर्तन" कविता के रचनाकाल के दौरान लगा था कि जैसे पन्त एक सुस्पष्ट दार्शनिक आधार पा गये हैं । कविता और दर्शन का जैसा साथ इस कविता में देखा जाता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । वस्तुत: परिवर्तन कविता ने हिन्दी के विशाल पाठक वर्ग को प्रभावित किया था लेकिन बाद की कविताएँ सूचित करती हैं कि दर्शन ही उनमें प्रमुख है । किन्तु "कला और बूढ़ा चाँद" में बिल्कुल दूसरी चीज देखने को मिलती है ।"[18]

---

18. कवि सुमित्रानन्दन पंत, नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.-27.

वस्तुत: यह दूसरी चीज कौन है जिसकी तरफ वाजपेयी जी ने इशारा किया है । ध्यातव्य है कि पन्त जी ने अपने आलोचकों के सन्दर्भ में लिखा है कि - मेरी रचनाओं के प्रति आलोचकों का मुख्यत: यह दृष्टिकोण रहा है कि मैं दर्शन या विचार तत्व को चाहे वह मार्क्सवादी हो, गांधीवादी या श्री-अरबिन्दवादी आत्मसात न कर केवल उसके बौद्धिक प्रभावों को अपनी कृतियों में दुहराता तथा थोपता रहा हूँ, इसीलिए वे रस-शून्य तथा विचार-प्रधान हो गयी हैं ।"[19]

पन्त जी ने ऐसे आलोचकों के ऊपर स्वयं ही आरोप लगाया है कि "ये लोग या तो पुरानी काव्य दृष्टि वाले आलोचक हैं या नये मूल्य के प्रति न केवल अनभिज्ञ हैं, अपितु उसके रस से भी उनका कोई नाता नहीं है । उन्होंने यह भी कहा है कि ये गुटबन्दी से पीड़ित हैं तथा इसमें ऐसे प्रगतिशील आलोचक भी हैं जिनका ध्येय केवल विरोध के लिए विरोध करना है । उनके अनुसार ऐसे ही लोग उनकी कविताओं को केवल अरबिन्द दर्शन की "कार्बनकापी" कहकर संतोष कर लेते हैं ।[20] एक स्थान पर पुन: उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - "मेरे काव्य में सदैव नवीन जीवन-मूल्य की खोज रही है । जो काव्य और कला इस नये मूल्य को अभिव्यक्ति नहीं देती, वह मेरी दृष्टि में अपूर्ण, जीवन-यथार्थ तथा वस्तुबोध से शून्य, प्रयोजनहीन कविता या कला है ।[21]

इस प्रकार पंत जी के इस कविवक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका बहुत सा काव्य अरबिन्द दर्शन से प्रभावित उनकी काव्यात्मा की पुकार है न कि अरबिन्द-दर्शन की "कार्बन कापी"। खैर, वह एक अलग विवाद का

---

19. साठ वर्ष : एक रेखांकन - पन्त, पृ.-65.
20. छायावाद : पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पंत, पृ.-76.
21. वही, पृ.-75.

विषय है, किन्तु जहाँ तक इस काव्यसंग्रह की कविताओं का सम्बन्ध है तो मैं यही कहूँगा कि ये कविताएँ "कविताएँ" है । यहाँ तक आते-आते कवि के सारे विचार और मूल्य साथ ही आदर्श भी चुक गये हैं । कवि को ध्वनि, छन्द, शब्द, भाव की किल्लत आ पड़ी है —

ओ रचने,

तुम्हारे लिए कहाँ से
ध्वनि छन्द लाऊँ ?
कहाँ से शब्द भाव लाऊँ ?

सब विचार, सब मूल्य
सब आदर्श लय हो गए ।

अतः अब इस विवेचन के उपरान्त अगले अध्याय में मैं पन्त जी की पूर्ववर्ती काव्यकृतियों के समक्ष "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का निरीक्षण-परीक्षण करूँगा ।

.....

अध्याय - 2

"कला और बूढ़ा चाँद" तथा "पन्त की पूर्ववर्ती काव्यकृतियाँ"

"कला और बूढ़ा चाँद" के सन् 1959 से प्रकाशन के पूर्व पन्त जी की पद्य और गद्य की निम्नलिखित कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं - उच्छ्वास (1922 ई॰), पल्लव (1926 ई॰), वीणा (1927 ई॰), गुंजन (1932 ई॰), ज्योत्सना (1934 ई॰), युगान्त (1936 ई॰), पाँच कहानियाँ (1936 ई॰), युगवाणी (1939 ई॰), ग्राम्या (1940 ई॰), स्वर्णकिरण (1947 ई॰), स्वर्णधूलि (1947 ई॰), मधुज्वाल (1948 ई॰), खादी के फूल (1948 ई॰), युगपथ (1949 ई॰), उत्तरा (1949 ई॰), रजत शिखर (1951 ई॰), शिल्पी (1952 ई॰), गद्यपथ (1953 ई॰), अतिमा (1955 ई॰), सौवर्ण (1957 ई॰), वाणी (1958 ई॰)।

"कला और बूढ़ा चाँद" में पंत जी की सन् 1958 की रचनाएँ संगृहित है। इस अध्याय में मैं इस संग्रह की कविताओं को पंत जी की पूर्ववर्ती काव्य-कृतियों की कविताओं के बरक्स रखकर निरीक्षण-परीक्षण करूँगा। सर्वप्रथम पन्त जी की पूर्ववर्ती काव्यमान्यताएं, छायावाद के सन्दर्भ में उनके विचार विशेष रूप से छायावाद के नाम को लेकर तथा छायावाद के बाद के साहित्यिक वादों

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद पर थोड़ी बहुत चर्चा करना लाज़मी होगा । चूंकि "कला और बूढ़ा चांद" तथा नयी कविता नामक एक अलग अध्याय भी इस शोध प्रबन्ध में है, इसलिए नयी कविता को लेकर यहाँ चर्चा करना बेमानी होगा । वैसे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद सम्बन्धी चर्चाएं भी काव्य-विकास को दिखाने के सन्दर्भ में ही होंगी । ध्यातव्य है कि पन्त जी मुख्य रूप से छायावाद के ही कवि माने जाते हैं और एक बात कई आलोचकों ने कही है कि उनकी मूल काव्यचेतना छायावादी काव्यचेतना ही है । रामविलास शर्मा ने इसीलिए "युगान्त-ग्राम्या" काल की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि - "पन्त जी ने इस काल में मार्क्स पर भी कविता लिखी और गांधी पर भी किन्तु पन्त के मार्क्स गांधीवादी प्रतीत होते हैं और गांधी मार्क्सवादी जबकि सचाई यह है कि अन्ततः दोनों छायावादी हैं ।"[1]

पन्त जी अपनी प्रारम्भिक रचनाओं की संज्ञा सन् 1918 से 20 तक की रचनाओं को देते हैं जो उनके "वीणा" नामक काव्य-संग्रह में संकलित है । इस काल की कविताओं के संदर्भ में उनका कहना है कि - "वीणा" काल में मैंने प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूली से रंगकर काव्य की सामग्री इकट्ठा की है, फूल, पत्ते और चिड़ियाँ, बादल-इन्द्र-धनुष, ओस-तारे, नदी-झरने, ऊषा-संध्या, कलरव, मर्मर और रलमल जैसे गुड़ियों और खिलौनों की तरह मेरी काव्यकल्पना की पिटारी में संजोये हुए है । –

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?"

---

1. संस्कृत और साहित्य, "आधुनिक हिन्दी कविता शीर्षक लेख, पृ॰- 27. डा॰ रामविलास शर्मा ।

इत्यादि सरल भावनाओं को बिखेरती हुई मेरी काव्य-कल्पना जैसे अपनी समवयस्का बाल-प्रकृति के गले में बाहें डाले प्राकृतिक सौंदर्य के छायापथ में विहार कर रही है।"[2]

छायावादी काव्य-वस्तु, शिल्प-विधान और शैली का अनुकरण उस समय कई कवियों ने किया, किन्तु प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी के अलावा कोई दूसरा प्रधान कवि के रूप में स्वीकृत नहीं हो सका। पन्त जी का, विशेष रूप से छायावाद के प्रारम्भिक काल में छायावाद को गौरवान्वित एवं महनीय रूप देने में बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। वह प्रकृति-प्रेमी, सौंदर्य-प्रेमी तथा आध्यात्म-प्रेमी के रूप में विख्यात हैं। उनकी कविता-यात्रा के हर पड़ाव पर एक अलग ढंग का चिन्तन है जो केवल विचार से ही नहीं, अपितु उनके व्यक्तित्व से भी प्रभावित है। उनकी कविता-यात्रा का पूर्वार्द्ध प्रकृति-सौंदर्य, नारी-सौंदर्य, अदृश्य चेतन-सत्ता के प्रति सौंदर्यगत आकर्षण से भरा पड़ा है जबकि उत्तरार्ध में प्रगतिशील विचारधारा, विशेष रूप से मार्क्सीय सौंदर्यशास्त्र के प्रति बौद्धिक आकर्षण, गांधीवाद, आध्यात्म और मुख्य रूप से अरबिन्द-दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताएं बिल्कुल ही अलग ढंग की हैं। यहाँ अध्यात्म का पुट देखने को मिलता है, किन्तु बहुत ही कम। यहाँ शाश्वत-बोध का भी एक अलग रूप है। घटनाओं परिस्थितियों, चरित्रों, वस्तुओं, पौधों, फूलों इत्यादि को देखने के "बाह्य-बोध" पर कवि को आश्चर्य होता है। इसलिए वह किसी के अप्रत्यक्ष माध्यम को लेकर कहता है कि -

तुम चाहते हो
मैं अधखिली ही रहूँ।
खिलने पर कुम्हला न जाऊँ
झर न जाऊँ।

---

2. पन्त जी द्वारा अपनी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन "रश्मि" की भूमिका से उद्धृत, पृ.-11.

TH-3618
DISS
O,152,1,N00:g
152M8

— हाय रे दुराशा !
मुझमें
खिलना
कुम्हलाना ही
देख पाए ! [3]

पन्त जी ने छायावाद पुनर्मूल्यांकन में छायावाद की विभिन्न व्याख्याओं पर आपत्ति की है । शायद उनको "छायावाद" अभिधान से अपनी छायावादी कृत्यों के मूल्यांकन में कमी दिखायी देती है । इसलिए वह छायावाद की अनेक परिभाषाओं से असंतोष प्रकट करते हैं । उन्होंने लिखा है कि - "छायावाद की समय-समय पर अनेक व्याख्याएँ हुईं, पर कोई भी व्याख्या उस युग के कृतित्व के प्रति अथवा उस नये काव्य-संचरण के मूल्यांकन के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सकी । उसके गुण दोषों का विवेचन हुआ और एक प्रकार से उसमें थोड़ा-बहुत सत्य भी है, पर काव्य-वस्तु की मर्म-सम्बन्धी मूल दृष्टि के अभाव में वे विवेचनाएँ उस व्यापक क्षितिज से अपना अर्थ ग्रहण न कर सकीं जिसमें छायावाद अपनी मौलिक प्रेरणा ग्रहण कर रहा था, अथवा जिस चैतन्य-शिखर से उस अमृत स्रोत की धाराएँ निःसृत हो रही थीं । [4]

आज छायावाद के प्रवर्तक के रूप में प्रसाद जी का नाम लिया जाता है । यहाँ भी पन्त जी प्रश्नचिह्न लगाते हैं । उन्होंने लिखा है कि - "छायावाद के प्रवर्तक या जनक के बारे में जो युग ने निर्णय दिया है, वह मुझे समीचीन प्रतीत नहीं होता । सामान्यतः छायावाद के प्रवर्तक होने का कीर्ति-किरीट हमारे आज प्रसाद जी के मस्तक पर रखा जाता है और हम भाक्ता की दृष्टि से उनका आदर करते हैं पर तथ्य-विश्लेषण की दृष्टि से यह उचित नहीं लगता । पन्त जी ने पुनः आगे लिखा है कि - "हमारे विचार में छायावाद

---

3. कला और बूढ़ा चाँद, "बाह्य बोध" शीर्षक कविता ।
4. छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पन्त, पृ.-13-14.

की प्रेरणा छायावाद के प्रमुख कवियों को उस युग की चेतना से स्वतन्त्र रूप से मिली है । ऐसा नहीं हुआ कि किसी एक कवि ने पहले उस धारा का प्रवर्तन किया हो और दूसरों ने उसका अनुगमन कर उसके विकास में सहायता दी हो ।"[5] इस प्रकार पन्त जी यह कहना चाहते हैं कि तत्कालीन देश-काल परिस्थितियों तथा हिन्दी की द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों के विकास-स्वरूप छायावाद का आगमन हुआ । अत: छायावादी कवि स्वतंत्र रूप से छायावादी कविता की तरफ प्रवृत्त हुए । वे युगीन आवश्यकता के अनुरूप भाषा-भाव की नवीनता के साथ आये । तत्कालीन समस्याओं के सरलीकरण के स्थान पर भाषा-भाव को सूक्ष्म-बोध के स्तर पर परखा तथा अपनी क्षमता से दिखा दिया कि साहित्य में इनकी अभिव्यक्ति का स्वरूप क्या होता है । इससे हिन्दी-भाषा की शक्ति का भी परिचय मिला - "इस प्रकार हम देखते है कि एक ही समय के आस-पास उस युग में व्याप्त वातावरण से प्राय: सभी छायावादी कवियों ने स्वतंत्र रूप से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी रूचि, स्वभाव, क्षमता के अनुरूप इस नये काव्य-संरक्षण को जन्म देकर संवारा और अनेक प्रकार के काव्योपकरणों का संचय कर वे उसके विकास की ओर प्रवृत्त हुए । और बहुत संभव ही नहीं स्वाभाविक भी है कि उन्होंने परस्पर एक दूसरे की रचनाओं की तुलना में अपने अपने काव्यबोध को निरख-परखकर उसे अधिक परिपूर्ण बनाने में सहायता ली ।"[6]

वैसे इन कवियों की कविताओं में भाव, कल्पना तथा बिम्ब सम्बन्धी साम्य देखा जा सकता है फिर भी यह कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता कि उन्होंने एक-दूसरे का अनुकरण नहीं किया । इनके विषय एक हो सकते हैं किन्तु प्रेरणा-स्रोत भिन्न-भिन्न थे । पन्त जी का कथन है कि - "प्राय: सभी प्रमुख छायावादी कवि विकास क्षमता-शील रहे हैं । और उन्होंने अपने-अपने

---

5. छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पन्त, पृ.-36.
6. वही, पृ.-37-38.

क्षेत्र में इस नये काव्य-मूल्य तथा अभिव्यंजना शैली का विकास किया ... यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चारों दिशाओं से स्वतंत्र रूप से नई काव्य-चेतना की धाराएँ बहकर छायावाद के युग-चरित्र मानस में संचित हुई । मुझे हिमाचल के अंकल में प्राकृतिक सौंदर्य-विस्मय के आकाश-चुम्बी शिखरों ने गाने को बाध्य किया, तो निराला जी को बंगाल की कला-संस्कृति उर्वर भूमि ने अपनी प्रतिभा के मृदंग में घन गम्भीर थाप देने को आमंत्रित किया, और प्रसाद जी वरुणा-अस्सी के तीर्थस्थल, भारतेन्दु की भूमि में, भारत के महान् गौरवपूर्ण अतीत के सांस्कृतिक वैभव में अवगाहन कर अपनी धीरोदात्त स्वरों की साधना करने को प्रेरित हुए, तो छायावादी काव्य के भावना-मन्दिर परागों की गीति-मूर्ति महादेवी जी गंगा-जमुना के संगम-भूमि प्रयाग में नयी मानव-संवेदना की सरस्वती की तरह प्रकट हुई ।"[7]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "मैथिलीशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय को छायावाद का प्रवर्तक स्वीकार किया है ।"[8] ऊपर कहे गये पन्त जी के एक कथन से यह बात तो जाहिर होती है कि पन्त जी प्रसाद को छायावाद के प्रवर्तकों में मानते है किन्तु वह उन्हें वैसा युग-प्रवर्तक का दर्जा देने को तैयार नहीं है जैसा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है । रहस्यवाद के रूप में छायावाद की व्याख्या करने को भी वह असंगत तथा तर्क-हीन मानते है । इस संदर्भ में मैं यहाँ कुछेक महत्वपूर्ण आलोचकों तथा रचनाकारों को उद्धृत करूँगा क्योंकि इन्होंने छायावाद की जो व्याख्या की उससे ऐसा लगता है जैसे ये रहस्यवाद को ही छायावाद मान बैठे । सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे मूर्धन्य आलोचक से ही यह गलती हुई । उनके लिए छायावाद वह है जिसमें कवि अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त

---

7. छायावाद - पुनर्मूल्यांकन, सुमित्रानन्दन पंत, पृ.-38.
8. रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.-650.

चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से अभिव्यंजना करता है। साथ ही वह इसकी उत्पत्ति यूरोप के छायाभास (फैंटसमैंटा) के अनुकरण पर बंगला के आध्यात्मिक गीतों के माध्यम से हिन्दी में अवतरित मानते हैं।"[9] डा॰ रामकुमार वर्मा का छायावाद के संदर्भ में कहना है कि उसमें परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।"[10] डा॰ केसरी नारायण शुक्ल छायावाद को रहस्यवाद से भिन्न इसलिए नहीं मानते क्योंकि छायावाद आध्यात्मिक विषय से सम्बन्धित है।[11] जिस रहस्यवाद की चर्चा हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की चर्चा करते हुए की जाती है उससे छायावाद की काव्यधारा बिल्कुल भिन्न है क्योंकि पन्त जी के अनुसार इस काव्य में ईश्वर ब्रह्म या सर्वात्मा के प्रति जिज्ञासा न होकर नवीन विश्व-जीवन का व्यापक संवेदन है, जिसका एक चेतनागत मूल्य है, तो एक रूपगत अथवा कला सौंदर्यगत मूल्य भी है और जिसकी अभिव्यक्ति नयी इसलिए है कि उसमें नये विश्व-जीवन, नये मनुष्यत्व की जीवन-श्वास प्रवाहित है और उस नये मूल्य को जीवन में मूर्त होने से पहले उसे काव्य-भूमि में अंकुरित कर स्थापित करना चाहता है।[12] पन्त जी के अनुसार आलोचकों को छायावाद में रहस्यवाद इसलिए दिखायी पड़ा क्योंकि उन्हें इस युग के "प्रत्येक लाक्षणिक प्रयोग वक्रोक्ति अथवा अन्योक्ति इस नयी अपरिचित भावभूमि में रहस्यमय प्रतीत हुई और उसका संदर्भ तथा सम्बन्ध वह इस विकास शील युग के पार्थिव यथार्थ तथा विश्व वास्तविकता में न खोजकर संतों और सूफियों की रहस्यानुभूतियों तथा ब्रह्म-अद्वैत आदि के दार्शनिक शृंगों पर खोजने लगे।"[12] महादेवी जी भी कहती हैं कि - "रहस्यवादी कवि प्रकृति में

9॰ हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ॰-6, 68.
10॰ साहित्य समालोचना - डा॰ रामकुमार वर्मा, पृ॰-8.
11॰ आधुनिक काव्यधारा - डा॰ केसरी नारायण शुक्ल, पृ॰-235, तृतीयवृत्ति.
12॰ छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पंत, पृ॰-18.

व्याप्त अखण्ड-असीम सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन करता है जबकि छायावादी कवि प्रकृति में व्याप्त अखण्ड-असीम चेतना के साथ अपने समीप हृदय का तादात्म्य अनुभव करता है ।"[13]

रहस्यवाद की एक सीमा है । उसमें सामान्यत: यथार्थ जगत् की उपेक्षा का भाव दिखायी पड़ता है जबकि छायावाद में कवि खुली आँखों से पूर्ण चैतन्य के साथ देश, दुनियाँ तथा काल को देखता है । वह भौतिक जगत् को पूरी तरह से स्वीकार करता है, इसीलिए पन्त जी लिखते हैं कि - छायावाद में रहस्यानुभूति को यदि किसी हद तक वाणी मिली भी तो वह रहस्यभावना मध्य-युगीन सन्तों की-सी निषेध-पोषित, जीवन-रस बंचित, आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर, नये विश्व-जीवन तथा विश्व-चैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति रही । मध्य-युगीन कबीर आदि के रहस्यवाद और छायावाद में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण भेद यह है कि मध्य-युगीन रहस्यवाद लोक-निष्क्रिय तथा निवृत्तिमूलक था और छायावाद जीवन-सक्रिय तथा प्रवृत्तिमूलक रहा है । आत्मबोध के निर्गुण, निरंजन सोपान पर चढ़ने के लिए जिस जीवन, मन, प्राण तथा राग-भावना के स्तर की मध्य-युगीन सन्तों ने उपेक्षा की, विश्वात्मा की वैचित्र्य भरी एकता के बोध की साधना में तत्पर छायावादी कवि ने मानव-जीवन, मन-प्राण तथा राग-भावना के स्तरों को अपने नवीन प्रवृत्तिमुखी सौंदर्य-वैभव के बोध से पुन: मण्डित कर मध्य-युगीन जीवन-विमुख दृष्टि को व्यापक विश्व-जीवन गरिमा की ओर उन्मुख किया ।"[14] यहाँ ध्यातव्य है कि छायावादी कवि युग-जीवन में व्याप्त सत्ता को ही शक्ति का ध्रुव-केन्द्र मानते हैं जबकि मध्यकालीन रहस्यवाद का ब्रह्म न केवल अदृश्य है अपितु न जाने क्या-क्या है । वह कहीं गूँगे

---

13. मामा - महादेवी वर्मा, भूमिका ।
14. छायावाद-पुनर्मूल्यांकन, पन्त, पृ.-18-19.

का गुड़ है, तो और कहीं कुछ और । इसीलिए पन्त जी को लिखना पड़ा कि - "छायावादी कवियों का अदृश्य प्रियतम कोई मध्ययुगीन ब्रह्म या ऐसी रहस्यमयी शक्ति की धारणा नहीं थी जो विश्व-जीवन से विच्छिन्न अपने ही में स्थित है - वह तो ब्रह्म की साक्षी स्थिति भर है - छायावादी कवि तो वर्तमान विश्व-विकास क्रम में एक नये मूल्य की खोज में रहा जिसकी प्राप्ति के लिए मानव-आत्मा के भीतर वर्तमान संघर्ष चल रहा है और जिसकी अस्पष्ट अनुभूति से प्रेरित होकर आज पूर्व और पश्चिम में नये दर्शनों, नये विज्ञानों तथा नये विचारकों कवियों एवं कलाकारों का जन्म हो रहा है ।" आगे पुन: पन्त जी लिखते हैं कि रहस्यवादी अलौकिक शक्ति से सान्निध्य पाने की चेष्टा करता है जबकि छायावादी उसमें निजी भावनाओं को आरोपित करता है ।"[15] यहाँ डा॰ नगेन्द्र को उद्धृत करना बहुत ही प्रासंगिक है क्योंकि पन्त जी पर उनकी पुस्तक बहुत ही चर्चा का विषय रही है । वह छायावादी कवियों के रहस्यवाद को ऐतिहासिक मानते हैं । वह कहते हैं कि 'छायावादी कवि द्विवेदी युगीन पार्थिव संसार की एकरसता से ऊबकर किसी धुंधले और रहस्यमय लोक की ओर बढ़े । साथ ही उनको रवीन्द्र की गीतांजलि, औजी के भावयोगी कवियों तथा हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादी कवियों से विशेष प्रोत्साहन मिला और वे उस अज्ञात के प्रति जिज्ञासाएं व्यक्त करने लगे । अत: स्पष्ट है कि वे किसी धार्मिक प्रेरणा से अभिभूत होकर इधर नहीं बढ़े बल्कि यह सब कुछ प्रतिक्रिया का परिणाम था जिसके कारण उनकी भावुकता और कल्पना को उड़ान का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ । इसका मनोवैज्ञानिक आधार यह भी है कि जिस काल में ये छायावादी कवि उदित हुए, वह काल मध्य-युगीन काल की तरह आध्यात्मिक नहीं था, न ही छायावाद के कवि इतने आध्यात्मिक थे कि वे अपनी धार्मिक भावना को काव्य में वाणी

15॰ छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पन्त, पृ॰-19.

देते । इन कवियों का जीवन भी अधिकांश पाश्चात्य प्रभावों से निर्मित था । ये कवि स्वभावत: चिन्तनशील रहे हैं, अत: इसी कारण ब्रह्म जीव, जगत् आदि सम्बन्धी जिज्ञासाएं इनके दार्शनिक अध्ययन का ही परिणाम थीं ।" पुन: इस बात को आगे बढ़ाते हुए डा॰ नगेन्द्र कहते हैं कि - "इन छायावादी कवियों का रहस्यवाद उनकी धार्मिक आत्मानुभूति का फल तो किसी प्रकार नहीं हो सकता । रहस्य प्रवृत्ति के कारण उनकी वृत्ति इसमें काफी रमी और अपनी कल्पना तथा चिन्तन शक्ति के बल पर उन्होंने इन रहस्यमय प्रश्नों पर काव्य का सुनहरा आवरण बड़े सुचारु रूप से चढ़ाया" ।[16] एक जगह और नगेन्द्र जी ने लिखा है कि -"छायावाद एक बौद्धिक युग की सृष्टि है । उसका जन्म साधना से यहाँ तक कि अनुभूत, आध्यात्मिक विश्वास से भी - नहीं हुआ । अतएव उसके रूपकों और प्रतीकों को यथातथ्य मानकर उसपर रहस्य साधना अथवा रहस्यानुभूति का आरोप करना, भ्रान्तियों का पोषण करना है ।"

अत: इससे एक बात साफ हो जाती है कि छायावाद की रहस्य भावना पर मध्यकालीन निर्गुण पंथी-काव्य में अभिव्यक्त रहस्य-साधना और भावना, भारतीय दर्शन की रहस्य-भावना और पाश्चात्य रहस्यवादी काव्य का मिला-जुला प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु इसकी भाव-भूमि बिल्कुल दूसरी है । छायावादी कविताएं प्रकृति और मानव की ओर उन्मुख हैं । पन्त जी ने एक बात और कही है । जो आलोचक छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह" कहते हैं, पंत जी ने उनसे भी इस बात पर असहमति व्यक्त की है । वह लिखते हैं कि - "दूसरी व्याख्या जो छायावाद की, की जाती है वह है - स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह । छायावाद की यह व्याख्या भी मुझे अपर्याप्त तथा एकांगी के साथ ही अस्पष्ट प्रतीत होती है ।"[17] जबकि

16॰सुमित्रानन्दन पंत, डा॰ नगेन्द्र, पृ॰-8.
17॰छायावाद पुनर्मूल्यांकन - सुमित्रानन्दन पन्त, पृ॰-24.

छायावाद की प्रमुख कवियित्री महादेवी वर्मा आलोचकों की बात को कुछ सीमा तक स्वीकार करती हैं। वह कहती है कि - "इस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं।[18] महादेवी जी ने स्वयं इस बात को अच्छी तरह से स्पष्ट किया है - "छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ, अत: स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हुआ। वस्तुत: उसकी सौंदर्य दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है, यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देता है। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिये, क्योंकि वह स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म सौंदर्यसत्ता की प्रतिक्रिया थी।"[19]

वैसे यह एक बहुत बड़ा सच है कि द्विवेदी युगीन कवियों का काव्य-विषय सामान्यत: इतिहास और पुराणों से लिया हुआ होता था। ये कवि प्रकृति को भी उपदेश के माध्यम के लिए लेते थे। इनमें कविता का स्वरूप वर्णनात्मक होता था, जिनमें स्थूल घटनाओं की प्रधानता होती थी। यहाँ इतिहास-पुराण के उपेक्षित पात्र नये रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। चूँकि इन सब बातों को कई विद्वान सोदाहरण दिखा चुके है, अत: ज्यादा विस्तार में इसकी चर्चा न कर केवल इतना ही कहना काफी होगा कि यहाँ इतिवृत्तात्मकता तथा मुख्यत: देखे हुए न कि झेले हुए यथार्थ का प्रतिरूपीकरण दिखायी देता है। साथ ही इनका वर्णन काव्यात्मक न होकर ज्यादातर गद्य का सा होता था। इनमें नैतिक जड़ता का समावेश मुख्य रूप से दिखायी देता है। सम्भवत: इसी की प्रतिक्रिया स्वच्छन्दता और बन्धनमुक्ति में हुई। यह प्रतिक्रिया इतनी प्रबल थी कि भावनात्मक स्तर पर तो मुक्ति की साँस कवि ने ली ही, "छन्दों

---

18. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य - गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.-64-65.
19. यामा - महादेवी वर्मा, (अपनी बात), पृ.-11-12.

के पायलों" को भरसक उतार फेंकने की भी कोशिश की । इसीलिए प्रारम्भ में इन कवियों को काफी विरोध झेलना पड़ा । चूँकि आदरणीय महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भाषा-शैली और विषय-वस्तु दोनों पर अपना नियन्त्रण थोपते थे, इसलिए कृत्रिम सीमाओं को तोड़कर जब इन कवियों ने नया मार्ग खोज निकाला तो एक प्रकार से भाषा और भाव दोनों के स्वरूप में क्रान्ति हो गयी । इससे जीवन्तता का प्रवेश हिन्दी-काव्यभाषा में हुआ । यह जीवन्तता धीरे-धीरे "तिल-तिल नूतन होय" की तरह काव्यभाषा की नवीनता में परिणत हुई और छायावाद पूर्ण वैभव के साथ हमारे समक्ष आया ।

डा॰ नगेन्द्र कहते हैं कि — " स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है । स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है । इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूपरंग, रूढ़ियाँ आदि सन्निहित हैं । और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है — उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह ।[20] पन्त जी के साथ बिल्कुल दूसरी बात है, वह छायावादी कविता को द्विवेदी-युगीन कविता का परिष्कार मानते हैं । उनका कहना है कि छायावादी कवि ने द्विवेदी युग की कविता की सीमाओं को तोड़कर अनेक नये-नये प्रयोग किये । इसीलिए पन्त जी कहते हैं कि यदि सूक्ष्म का अर्थ अभिव्यंजना के वैचित्र्य या चातुर्य से है, तो वह सूक्ष्म नहीं कही जा सकती । यदि हम किसी अनगढ़ मूर्ति को तराशकर, उसे सुथरे ढंग से गढ़ दें, तो उसका रूपविधान सूक्ष्म न कहलाकर पूर्ण कहलाएगा ।" आगे पुन: लिखते हैं — "इन्होंने (छायावादी कवियों ने) शैली के क्षेत्र में साकेतिकता, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता एवं मानवीकरण आदि पद्धतियों का

20॰ सुमित्रानन्दन पन्त - डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰-2.

अधिक प्रयोग कर अभिव्यंजना में एक अद्भुत वैचित्र्य का समावेश किया, और इनके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अर्थों की व्यंजना की । इधर विषय-वस्तु की दृष्टि से ये कवि जीवन के वाह्य भौतिक मूल्यों से परोन्मुख होकर जीवन के आन्तरिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में लगे रहे ।"[21] एक जगह और पन्त जी ने लिखा है कि — "यदि सूक्ष्म, चैतन्य या भावतत्व से सम्बन्ध रखता है तो उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न कहकर अधिक से अधिक स्थूल का सूक्ष्म में रूपान्तर कहा जा सकता है ।"[22]

छायावाद को छायावाद के अलावा रहस्यवाद और स्वच्छन्दतावाद नाम दिये गये । रहस्यवाद के संदर्भ में मैं ऊपर चर्चा कर चुका हूँ । जहाँ तक छायावाद का सम्बन्ध है, तो अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया तथा स्वच्छन्दता बाद इसलिए कहा गया क्योंकि इसमें कवि कल्पना लोक में स्वच्छन्द विचरण करता है । डा॰ नामवर सिंह ने रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्दों के सन्दर्भ में लिखा है कि - "जहाँ तक रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद शब्दों के शब्दार्थ और लोकप्रचलित भाव का सम्बन्ध है, इन तीनों में नि:सन्देह थोड़ा-थोड़ा अन्तर है । रहस्यवाद ज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद चित्रण की सूक्ष्मता और स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा ।" आगे उन्होंने पुन: लिखा है कि - परन्तु जब युगविशेष की काव्यधारा के सम्बन्ध में इन शब्दों पर विचार किया जाता है तो रहस्यवाद, छायावाद, स्वच्छन्दतावाद तीनों एक ही काव्यधारा की विविध प्रवृत्तियाँ मालूम होती हैं । वस्तुत: ऐसी बहुत सी कविताएं हैं जिनमें एक ही जगह रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दता-

---

21॰ "छायावाद पुनर्मूल्यांकन" - सुमित्रानन्दन पंत, पृ॰-24-25.
22॰ वही, पृ॰-24.

वाद तीनों है । उदाहरण-स्वरूप पंत के "मौन-निमन्त्रण" को लें । इसमें अज्ञात की जिज्ञासा होने के कारण रहस्यवाद है, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के कारण छायावाद है और कल्पना-लोक में स्वच्छन्द विचरण के कारण स्वच्छन्दतावाद भी है । जब एक कविता में इन तीनों वादों अथवा प्रवृत्तियों को अलगाना कठिन है, तो पूरी काव्यधारा की क्या बात ।"[23] आगे उन्होंने पुन: लिखा है कि - "वस्तुत: छायावादी कविताओं की परिभाषा का निश्चय उन कविताओं में पायी जाने वाली सभी प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिए और यहाँ हमें यह न भूलना चाहिए कि छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से । इस जागरण में जिस तरह क्रमश: विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी और इसके फलस्वरूप "छायावाद" संज्ञा का भी अर्थविस्तार होता गया । "छायावाद" नामकरण जिन कविताओं के आधार पर हुआ था, वैसी ही कविताएं अगले वर्षों में भी नहीं होती रही, बल्कि उनकी विषय-वस्तु और रूप-विन्यास का विस्तार हुआ । इसलिए छायावाद के आरम्भिक अर्थ में भी क्रमश: व्यापकता का आना स्वाभाविक है ।"[24]

इस प्रकार स्पष्ट है कि "छायावाद" संज्ञा का धीरे-धीरे बहुत ही अर्थविस्तार हुआ जिससे 1918-1936 के बीच की लिखी गयी प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी की समस्त कृतियाँ इसके अन्तर्गत आ गयीं ।

प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होने वाले उस समय के अनेक रचनाकारों में एक पन्त जी भी थे । सन् '36 के बाद पन्त जी इस प्रकार की

---

23. छायावाद - डा. नामवर सिंह, पृ.-18.
24. वही, पृ.-19.

कविता की ओर आकृष्ट हुए । "पल्लव" जिस तरह से छायावाद के घोषणापत्र के रूप में हमारे समक्ष आता है, वैसे ही "रूपाभ" मासिक पत्रिका का सम्पादकीय 1938 में पन्त जी द्वारा प्रगतिवाद का घोषणा पत्र प्रस्तुत करता है । उन्होंने लिखा है कि - "इस युग की आवश्यकता ने जैसा रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं । श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी है । अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं मिल सकती । उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है ।"[25]

सामान्यत: बहुत से आलोचक विद्वान, रचनाकार प्रगतिवाद को हिन्दी साहित्य में साहित्य सम्बन्धी मार्क्सवादी दृष्टिकोण या मार्क्सवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति कहते हैं । कुछ आलोचक प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य के सन्दर्भ में अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाते हैं । शिवदानसिंह चौहान ने लिखा है कि - "प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में भेद है, यह स्पष्ट होना ही चाहिए, अन्यथा गलत शब्दों का प्रचलन जारी रहेगा । आप कहेंगे कुछ,लोग समझेंगे कुछ । प्रगतिशील कविता का प्रश्न जब उठता है तो उसके पीछे किसी विशेष दार्शनिक "वाद" की मान्यता का आग्रह नहीं किया जा सकता । एक प्रगतिशील कवि गांधीवादी भी हो सकता है, मार्क्सवादी भी और द्वैत-अद्वैतवादी भी । जो साहित्य पाठक को स्वस्थ प्रेरणा देता है, मनोवृत्तियों को और उभारकर व्यक्ति को असामाजिक और मानवद्रोही नहीं बनाता, जीवन-संग्राम में आगे बढ़ने का बल और साहस देता है और मनुष्य

---

25. पंत का संपादकीय - रूपाभ, 1938, वर्ष-1, अंक-1.

की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाता है, हिंसा और द्वेष को नहीं बढ़ाता और जो वास्तव में जीवन की मार्मिक और सारगर्भित स्थितियों का चित्रण करता है अर्थात् जिसमें कला-सौष्ठव और गहरायी है, वह सब प्रगतिशील ही तो है।"[26] वह प्रगतिवाद के सम्बन्ध में कहते है कि - "प्रगतिवाद साहित्य की धारा नहीं है, साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है, जैसे रस-सिद्धान्त साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का प्राचीन आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। अत: प्रगतिवाद को सौंदर्यशास्त्र-सम्बन्धी मार्क्सीय दृष्टिकोण का हिन्दी नामकरण समझना चाहिए।"[27] डा॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय भी चौहान जी के ही मत की पुष्टि करते है। इसका सीधा मतलब है कि "प्रगतिशील" शब्द व्यापक अर्थ को समेटे हुए है जबकि प्रगतिवाद संकुचित। इस प्रकार इनके अनुसार भारतीय परम्परा का समस्त श्रेष्ठ साहित्य प्रगतिशील साहित्य है जबकि मार्क्सवादी सौंदर्य-सिद्धांत प्रगतिवाद। किंतु इस सन्दर्भ में डा॰ नामवर सिंह का मत है कि - "जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है। "वाद" की अपेक्षा "शील" को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दोनों में भेद करना कोरा बुद्धि-विलास है और कुछ लोगों की इस मान्यता के पीछे प्रगतिशील साहित्य का प्रच्छन्न विरोध-भाव छिपा है।"[28] इन मतभेदों के बावजूद आज यह एक मान्य तथ्य है कि "प्रगतिवाद" साहित्य के मार्क्सवादी दृष्टिकोण के लिए रूढ़ हो गया है वैसे ही जैसे छायावाद रोमान्टिक कविता के लिए। पन्त जी इस धारा की तरफ आकर्षित तो हुए, किन्तु बाद में उन्होंने इसका साथ छोड़ दिया। इसका कारण शायद यह था कि उन्हें यह

26॰ साहित्य की समस्याएं - प्रगतिवाद या प्रवृत्तिनिरूपण, शिवदानसिंह चौहान, पृ॰-62.
27॰ वही, पृ॰-54.
28॰ आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, डा॰ नामवर सिंह, पृ॰-57.

एक प्रकार से एकांगी विचारधारा का अंग लगी ।

वैसे जहाँ तक प्रगतिवाद के सम्बन्ध में पन्त जी के विचारों का सवाल है, तो आधुनिक कवि, भाग-2 की भूमिका में पन्त जी ने लिखा है कि - "प्रगतिवाद उपयोगितावाद ही का दूसरा नाम है । वैसे सभी युगों का लक्ष्य सदैव प्रगति ही की ओर रहा, पर आधुनिक प्रगतिवाद ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन-समाज की सामूहिक प्रगति के सिद्धान्तों का पक्षपाती है ।"[29] उन्होंने आगे पुन: लिखा है - सामूहिकता एवं सामाजिकता को प्रधानता देकर व्यक्ति के कल्याण का पथ किस प्रकार प्रशस्त तथा उन्मुक्त किया जा सकता है, यह समस्या छायावाद के द्वितीय चरण के सम्मुख उपस्थित हुई, जिसकी मर्मराहट हमें विद्रोह भरे अनगढ़ प्रगतिवाद के कवियों में मिलती है । प्रगतिवाद का जीवन-दर्शन भाव-प्रधान तथा वैयक्तिक न रहकर धीरे-धीरे वस्तु-प्रधान तथा सामाजिक हो गया; किन्तु इतने मापक तथा मौलिक परिवर्तन को प्रगतिवाद ठीक-ठीक समझ सका और अपनी वाणी से सामूहिक विकास की भावना को ठीक पथ पर अग्रसर कर सका, ऐसा कहना अनुचित होगा । काव्य की दृष्टि से उसका सौंदर्यबोध पूंजीवादी तथा मध्यवर्गीय भावना की प्रतिक्रियाओं से पीड़ित रहा । उसका भावोद्वेग किसी जनवादी यथार्थ तथा जीवन-सौंदर्य को वाणी देने के बदले धनपतियों तथा मध्यवृत्ति वालों के प्रति विद्वेष और क्षोभ उगलता रहा ।[30]

पन्त जी ने छायावादी कविता और प्रगतिवादी कविता दोनों की तुलना भी की है । वह लिखते हैं कि - "प्रगतिशील कविता वास्तव में छायावाद की ही एक धारा है । दोनों के स्वरों में जागरण का उदात्त संदेश मिलता है - एक में मानवीय जागरण का, दूसरे में लोक जागरण का । दोनों

---

29. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-284. राजकमल प्रकाशन.
30. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, परिदर्शन, पृ.-294, राजकमल प्रकाशन.

की जीवन दृष्टि में व्यापकता रही है - एक में सत्य के अन्वेषण या जिज्ञासा की, दूसरे में यथार्थ की खोज या बोध की । दोनों ही वैयक्तिक क्षुद्र अहंता को अतिक्रम कर प्रवाहित हुई है; एक अमर की ओर, दूसरी विस्तृत धरातल की ओर । दोनों ही क्षमतापूर्ण रही है, एक अन्तर गाम्भीर्य की, दूसरी सामाजिक गति की शक्ति से ।"[31] लेकिन इस सकारात्मक पक्ष को तो पन्त जी दिखाते ही है, नकारात्मक पक्ष भी उनके नज़रों के सामने है । इसीलिए वह छायावाद और प्रगतिवाद की कमियों की तरफ भी इशारा करते है । वह लिखते है कि - "जिस प्रकार छायावादियों में भागवत् या विराट् चेतना के प्रति एक क्षीण दुर्बल आग्रह, आकुलता तथा बौद्धिक जिज्ञासा की भावना रही है, उसी प्रकार तथा कथित प्रगतिवादियों में जनता तथा जनजीवन के प्रति एक निर्जीव संवेदना तथा निर्बल ललक का भाव दुराग्रह की सीमा तक परिलक्षित होने लगा । दोनों ही के मन में सम्यक साधना, अभीप्सा तथा बोध की कमी के कारण अपने इष्ट या लक्ष्य की रूपरेखा तथा धारणा निश्चित नहीं बन पायी ।"[32] इस प्रकार पन्त जी प्रगतिवाद के बहाने अपने छायावादी काव्य की कमियों की तरफ भी इशारा कर रहे है । उन्होंने प्रगतिवादी समीक्षकों की भी आलोचना की है । शायद उनके मन में यह विश्वास है कि प्रगतिवादी समीक्षकों ने उनकी रचनाओं के प्रति न्याय नहीं किया । उनके अनुसार - "समीक्षा की दृष्टि से अधिकांश प्रगतिवादी आलोचक साहित्य-चेतना के सरोवर-तट पर राजनीतिक प्रचार का झण्डा गाड़े, अमर ही हाथ-पाँव मारकर, काई सने झागों में तैरने का सुख लूटते रहे है और छिछले स्थानों से कीचड़ उछालते हुए काव्य की आत्मा को ढंककर तथा उसकी रीढ़ को तोड़ मरोड़कर नवदीक्षितों को दिग्भ्रान्त भर करते रहे है ।"[33]

---

31. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-292, राजकमल प्रकाशन.
32. वही, पृ.-294,
33. वही, पृ.-294,

यह तो हुआ प्रगतिशील कविता के पक्ष-विपक्ष में पन्त जी का विचार । अब मैं बहुत ही थोड़े में प्रयोगवाद के सन्दर्भ मे उनके विचारों को अगली पंक्तियों में रखूँगा । वह कहते है कि - प्रगतिवाद के अतिरिक्त छाया-वादी काव्यभावना ने एक ओर आत्माभिव्यक्ति की पगडन्डी पकड़ी, जो पीछे स्वतंत्र रूप धारण करने पर, प्रयोगवादी कविता कहलायी । आगे पुन: लिखते है कि "जिस प्रकार प्रगतिवादी काव्यधारा मार्क्सवाद और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक आर्थिक तथा राजनीतिक तर्क-वितर्कों में फँसकर एक किमाकार यान्त्रिक सामूहिकता की ओर बढ़ी, उसी प्रकार प्रयोगवाद की निर्झरिणी कल-कल, छल-छल करती हुई फ्रायडवाद से प्रभावित होकर, स्वर-संगतिहीन भावना लहरियों में मुखरित, अवचेतन की रूद्ध ग्रन्थियों को मुक्त करती हुई एवं दमित कुण्ठित आकांक्षाओं को वाणी देती हुई, लोकचेतना के स्रोत में द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने पृथक अस्तित्व पर अडिग जमी रही । छायावादी भावना की सूक्ष्मता इसमें टेकनीक की सूक्ष्मता बन गयी, छायावादी शब्दवैचित्र्य इसमें उक्तिवैचित्र्य और उसके शाश्वत दृष्टिकोण का स्थायित्व क्षणिक का उद्दीपन बन गया । अपनी रागात्मक विकृतियों तथा संदेहवादिता के कारण इसकी सौंदर्यभावना अपने निम्न स्तर पर केचुओं-घोंघों के सरीसृप जगत् से अनुप्राणित रही, जो वास्तव में पश्चिम की आधुनिकतम ह्रासोन्मुखी संस्कृति तथा साहित्य का प्रभाव है । इस प्रकार छायावाद के अन्तर्गत उसकी जीवन सौंदर्यवादी काव्यधारा आज अपनी अति-वैयक्तिक, उपचेतनाग्रस्त भावना, आत्मदया पीड़ित अहंता तथा रूपकारिता एवं साज संवार-सम्बन्धी अतिआग्रह के कारण प्रयोगवाद के रूप में विकीर्ण हो रही है ।" इसकी व्यापक कमियाँ पन्त जी के अनुसार इस प्रकार है कि - "उसमें अब वह मानववादी व्यापकता, उदात्तता, वह अन्तर्भेदी अन्त:स्पर्शी दृष्टि की गहरायी, वह लोकोभ्युदय की अभीप्सा तथा जागरण के संदेश का

प्रकाश नहीं देखने को मिलता । इसमें उर्दू शायरी की सी बारीकियों, रीतिकालीन स्वरंक्यपूर्ण चित्रणों, अत्युक्तियों, भेदोपभेदों की विचित्रताओं तथा सस्ती अहंजन्य असाधारणताओं के कारण सभी ओर से ह्रास के चिह्न प्रकट होने लगे हैं ।"[34]

इस प्रकार प्रयोगवाद के सन्दर्भ में पन्त जी ने ये दो टूक विचार इन पंक्तियों में रखे है । यहाँ विशेष रूप से छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के सन्दर्भ में पन्त जी के विचारों को रखने की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि इन साहित्यिक धाराओं के सन्दर्भ में उनके विचार उनके काव्य-विकास को समझने में सहायक होंगे । इससे उनकी काव्य मान्यताओं को समझने में भी सहायता मिलेगी । चूँकि इस शोध-प्रबन्ध में अलग से छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कोई अध्याय नहीं है और इस अध्याय में "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का अध्ययन पन्त जी की पूर्ववर्ती काव्यकृतियों के परिप्रेक्ष्य में करना है, इसलिए भी इसकी चर्चा करना प्रासंगिक लगा । यदि इसकी चर्चा यहाँ मैं नहीं करता, तो पन्त जी की छायावादी और प्रगतिवादी काव्यकृतियाँ उनके काव्य-विकास के अन्तर्भूत सम्बन्ध को अच्छी तरह नहीं दिखा पातीं । अतः इस चर्चा के बाद अब मैं विशेष रूप से "कला और बूढ़ा चाँद" की पूर्ववर्ती काव्यकृतियों का संक्षेप में विवेचन करते हुए इस विवेचन-विश्लेषण को आगे बढ़ाऊँगा ।

जहाँ तक पन्त जी की प्रारम्भिक काव्यकृतियों का प्रश्न है, तो इसमें "पल्लव" सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसकी काव्य-चेतना, भावबोध तथा कला-शिल्प सम्बन्धी दृष्टि कवि को अँगरेजी-साहित्य के गम्भीर पठन तथा कालिदास आदि संस्कृत कवियों से मिली । पन्त जी के ही अनुसार इसकी महत्वपूर्ण विशेषता है - "कला, सौंदर्यबोध तथा भावनाजनित आवेगों की

---

34. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-295, परिदर्शन शीर्षक से ।

प्रधानता । इसमें प्रकृति सौंदर्य और प्रकृति-प्रेम की अभिव्यंजना बहुत ही प्रौ और परिपक्व रूप में हुई है ।" "पल्लव" से पूर्व पन्त जी की "उच्छ्वास" सन् 1922 में प्रकाशित हो चुकी थी जिस पर पंत जी के एक मित्र श्री शिवाधार पाण्डे ने सरस्वती में एक आलोचनात्मक लेख भी लिखा था । इस लेख में उन्होंने पन्त जी के रचना-सौष्ठव की बहुत ही प्रशंसा की थी । किन्तु दूसरे कारणों से भी "पल्लव" बहुत ही महत्वपूर्ण साबित हुआ । हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है कि - कई दृष्टियों से "पल्लव" का प्रकाशन युगान्तरकारिणी घटना थी । इसने द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक कविता के अमर छायावादी कविता की विजय का घोष किया । इसने यह संकेत दिया कि कवि ने अब एक अधिक भावपूर्ण व्यक्तित्व से बोलना आरम्भ किया है, उसने वस्तुओं को देखने का एक नया दृष्टिकोण अपनाया है, उसकी भावभूमि भी बदल गयी है जिसपर प्रकृति के सौन्दर्य रहस्य की प्रधानता है और इतना सब बदलने के बाद स्वाभाविक है कि उसकी अभिव्यंजना की शैली भी बदल गयी है । "पल्लव" समाप्त करने के बाद जो प्रभाव मन पर रह जाता है वह यह है - एक प्रकृति-प्रेमी कवि मानवी प्रेम की ओर आकर्षित होता है और उसके प्रथम आघातों से ही विचलित होकर विश्व-जीवन पर चिन्तन करने लगता है और पाता है कि यह अखिल ब्रह्माण्ड ही वेदनामय है ।" इसके बाद बच्चन जी ने इसकी भूमिका की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "पल्लव" की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी । इसने अब भी चल रहे ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली के विवाद को समाप्त किया । इसने सिद्ध किया कि पन्त जी को खड़ी बोली काव्य के भविष्य, अपनी कवित्व शक्ति में कितना दृढ़ विश्वास है । उन्होंने खड़ी बोली की प्रकृति और उसके छन्दों की प्रवृत्ति का सूक्ष्म विवेचन किया और यह भी दिखलाया कि अपने शब्दों के चुनाव और छन्दों के चयन में उन्होंने कितनी सतर्कता बरती है । अपने स्वभाव वैषम्य से उन्होंने कहीं-कहीं व्याकरण की कड़ियाँ भी तोड़ीं, पर इतने

दिनों के बाद भी वे सर्वसाधारण द्वारा स्वीकृत नहीं हुई और उन्हीं के काव्य की विशेषता बनी हुई है ।"[35]

सन् 1918 से 20 तक की उनकी अधिकांश रचनाएँ "वीणा" नामक काव्य-संग्रह में छपी है । इसकी काव्य-सामग्री प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओं को कल्पना की तूली से रँगकर इकट्ठा की गयी है । इसकी "प्रथम रश्मि" नामक कविता ने पन्त जी के अनुसार काव्य-साधना की दृष्टि से नवीन प्रभात-किरण की तरह प्रवेश कर उनके भीतर पल्लव-काल के काव्य-जीवन का समारम्भ कर दिया था । "वीणा" की विस्मयभरी रहस्यप्रिय बालिका अधिक मांसल, सुरुचिसुरंगपूर्ण बनकर प्राय: मुग्धा युवती का हृदय पाकर, जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील होकर "पल्लव" में प्रकट हुई है । अत: पन्त जी के अनुसार प्रकृति की रमणीय वीथिका से होकर ही वह काव्य के भाव-विशद सौंदर्य प्रासाद में प्रवेश पा सके है ।"[36] "पल्लव-काल में पन्त जी ने भाषा का बहुत ही सशक्त प्रयोग किया है । आलोचकों को इसीलिए कहना पड़ा कि भाषा-प्रयोगों में पल्लव-काल की समृद्धि बाद में देखने को नहीं मिलती ।" "पल्लव" की परिवर्तन शीर्षक कविता के सन्दर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है कि - "परिवर्तन" कविता के रचनाकाल के दौरान लगा था कि जैसे पन्त एक सुस्पष्ट दार्शनिक आधार पा गये है । कविता और दर्शन का जैसा साथ इस कविता में देखा जाता है, अन्यत्र दुर्लभ है । वस्तुत: "परिवर्तन" कविता ने हिन्दी के विशाल पाठकवर्ग को प्रभावित किया था ।" स्वयं पन्त जी ने लिखा है कि "पल्लव" की छोटी-बड़ी अनेक रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य की झाँकियाँ दिखती हुई तथा भावना के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई मेरी कल्पना "परिवर्तन" शीर्षक कविता में मेरे उस काल के हृदय-मन्थन तथा बौद्धिक

---

35. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि सुमित्रानन्दन पंत, सं. हरिवंशराय बच्चन, प्रवेशिका, पृ.-13-14.

36. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-222, "परिदर्शन" । राजकमल प्रकाशन ।

संघर्ष का विशाल-दर्पण सी बन गयी है, जिसमें "पल्लव" युग का मेरा मानसिक विकास तथा जीवन की संग्राह्णीय अनुभूतियों के प्रति मेरा दृष्टिकोण प्रति-बिम्बित है । इस अनित्य जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में "परिवर्तन" के रचनाकाल से ही प्रारम्भ हो गया था । "परिवर्तन" उस अनुसन्धान का केवल एक प्रारम्भिक भावोच्छ्वास मात्र है ।"[37]

पन्त जी की यह बात यह भी साबित करती है कि वह विचार और दर्शन के प्रति न केवल बौद्धिक अपितु भावनात्मक स्तर पर भी प्रारम्भ से ही आकर्षित थे । मैंने इस शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में ही इस बात की तरफ संकेत दिया है कि पन्त जी अपनी कविताओं के माध्यम से स्थायी और सार्व-भौम तक पहुंचने की कोशिश करते हुए दिखायी देते हैं । वस्तुत: यही वजह है कि उनका "परिवर्तन" का अनुसन्धान उन्हीं के अनुसार केवल एक प्रारम्भिक भावोच्छ्वास मात्र है और यह अनित्य जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न है । इस बात को आगे बढ़ाते हुए मैं पुन: पन्त जी को उद्धृत करूंगा । वह लिखते हैं कि - "वीणा" काल का प्राकृतिक सौंदर्य का प्रेम "पल्लव" की रचनाओं में भावना के सौन्दर्य की मांग बन गया है और प्राकृतिक रहस्य की भावना ज्ञान की जिज्ञासा में परिणत हो गयी है । वीणा की रचनाओं में जो स्वाभाविकता मिलती है, वह "पल्लव" में कलान्संस्कार तथा अभिव्यक्ति के मार्जन में बदल गयी है । "पल्लव" की अधिकांश रचनाएँ प्रयाग में लिखी गयी हैं । सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन के साथ ही हमारे देश की बाहरी परिस्थितियों ने भी जैसे हिलना-डुलना सीखा । युग-युग से जड़ीभूत उनकी वास्तविकता में सक्रियता तथा जीवन के चिह्न प्रकट होने लगे । इस जागरण के भीतर से एक नवीन वास्तविकता की रूपरेखा चित्त को आकर्षित करने लगी ।

---

37. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-288, राजकमल प्रकाशन.

मेरे मन में वे संस्कार धीरे-धीरे संचित तो होने लगे । पर "पल्लव" की रचनाओं में वे मुखरित नहीं हो सके । "पल्लव" की सीमाएं छायावादी अभिव्यंजना की सीमाएं हैं । वह पिछली वास्तविकता के निर्जीव भार से आक्रान्त उस भावना की पुकार थी जो बाहर की ओर राह न पाकर भीतर की ओर स्वप्न-सोपानों पर आरोहण करती हुई युग के अवसाद तथा विवशता को वाणी देने का प्रयत्न कर रही थी और साथ ही कल्पना द्वारा नवीन वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थी । "पल्लव" की प्रतिनिधि रचना "परिवर्तन" में विगत वास्तविकता के प्रति असन्तोष तथा परिवर्तन के प्रति आग्रह की भावना विद्यमान है । साथ ही जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर से नित्य सत्य को खोजने का प्रयत्न भी है, जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके ।[38]

"पल्लव" कालीन रचनाओं की चर्चा करते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने प्रगीत काव्य की चर्चा की है और कहा है कि - "जहां तक प्रगीतकाव्य का सम्बन्ध है, हिन्दी का शैली हिन्दी में आता-आता ही रह गया ।[39] उन्होंने यह भी कहा है कि "पन्त के काव्य में कल्पना की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । उनका मानना था कि कल्पना की समृद्धि, उसकी उर्वरता तथा उसकी उड़ान में पन्त जी छायावादियों में अप्रतिम थे, किन्तु उनका यह भी कहना था कि जहां कवि अपनी इस शक्ति को संयमित नहीं रख सका है और कविता के मूलवर्ती भावतत्व को वह अपदस्त कर बैठी है, वहां उनकी कविता न केवल वायवीय हो उठी है, अपनी भावान्विति खोकर एकदम निरीह भी बन गयी है ।"[40] पन्त को आचार्य वाजपेयी भविष्यदृष्टि से युक्त कवि

---

38. पंत ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-289,
39. कवि सुमित्रानन्दन पंत - नन्ददुलारे वाजपेयी, सं.- शिवकुमार मिश्र, पृ.-47.
40. वही, प्रस्तावना, पृ.-15.

की संज्ञा देते थे । उनका कहना था कि छायावादियों में भविष्य की चर्चा सबसे अधिक पन्त ने की है और इसे भी उनकी कल्पना का कार्य ही मानना चाहिए ।[41] एक बात की तरफ कई लोगों ने इशारा किया है कि कल्पना की वजह से पन्त की कविताएं प्रभावान्विति में वह सफलता नहीं पातीं जैसी सफलता निराला को प्राप्त है । जैसा कि पन्त जी ने स्वयं कहा है कि पल्लव की सीमाएं छायावादी अभिव्यंजना की सीमाएं हैं । अत: इसकी कमियों को दिखाने की अपेक्षा यदि पन्त जी की ही बातों को कहें तो - "न पत्तों का मर्मर संगीत, न पुष्पों का रस राग पराग, बस यह केवल पल्लव है ।" जरा आगे पंक्तियों में ध्यान दीजिए कि "पल्लव" की भूमिका में कवि कैसी भाषा और कैसे विचार को अभिव्यक्ति दे रहा है - "जिस प्रकार उस युग के स्वर्ण गर्भ से भौतिक सुख-शान्ति के स्थापक प्रसूत हुए, उसी प्रकार मानसिक सुख-शान्ति के शासक भी; जो प्रात: स्मरणीय पुरुष-इतिहास के पृष्ठों पर रामानुज, रामानन्द, कबीर, महाप्रभु बल्लभाचार्य, जनक इत्यादि नामों से स्वर्णांकित हैं, इतिहास के ही नहीं, देश के हृत्पृष्ठ पर उनकी अक्षय अष्टछाप, उसकी सभ्यता के वक्ष पर उनका श्रीवत्स चिह्न अमिट और अमर है ।" आगे पुन: लिखा है कि - ये दोनों काव्य-रत्न (सूरसागर और मानस) भारती के अक्षय भंडार के दो सिंह द्वार हैं, जो उस युग के भागवत् प्रेम की पवित्र धातु से ढाल दिये गये हैं ।"[42] "पल्लव" का कवि कविता की भाषा के बारे में कहता है कि - कविता की भाषा का प्राण राग है । राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनन्त से मिलाती है । राग-ध्वनि-लोक निवासी शब्दों के हृदय में परस्पर स्नेह तथा ममता का सम्बन्ध स्थापित करता है । संसार के पृथक-पृथक पदार्थ, पृथक-पृथक ध्वनियों के चित्र-मात्र हैं । समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त यही राग, उसकी शिरोध-

---

41. कवि सुमित्रानन्दन पन्त, नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.-14.
42. पल्लव, पृ.-4-5.

शिराओं में प्रवाहित हो अनेकता में एकता का संचार करता, यही विश्व-वीणाओं के अगणित तारों से, जीवन की अंगुलियों के कोमल-कर्कश, घात-प्रतिघातों, लघु-गुरू सम्पर्कों, ऊँचनीच प्रहारों से अनंत झंकारों, असंख्य स्वरों में फूटकर हमारे चारों ओर आनन्दाकाश के स्वरूप में व्याप्त हो जाता; यही संसार के मानस-समुद्र में अनेकानेक इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं, कल्पनाओं की तरंगों में प्रतिफलित हो, सौंदर्य के सौ-सौ स्वरूपों में अभिव्यक्ति पाता है । प्रेम के अक्षय मधु में सने, सृजन के बीजरूप पराग से परिपूर्ण संसार के मानस-शतदल के चारों ओर यह चिर-अतृप्त स्वर्ग-भृंग एक अनन्त गुंजार में मंडराता रहता है ।[43] आगे पुन: पन्त जी लिखते हैं कि -"काव्य-संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं, न कि व्यंजन, जिस प्रकार सितार में राग का रूप प्रकट करने के लिए केवल "स्वर के तार" पर ही कर-संचालन किया जाता है और शेष तार केवल स्वर-पूर्ति के लिए मुख्य तार को सहायता देने भर के लिए झंकृत किये जाते हैं, उसी प्रकार कविता में भी भावना का रूप स्वरों के सम्मिश्रण, उनकी यथोचित मैत्री पर ही निर्भर रहता है ।[44] कविता की परिभाषा देते हुए पन्त जी फिर लिखते हैं कि - कविता विश्व का अन्तरतम संगीत है, उसके आनन्द का रोमहास है, उसमें हमारी सूक्ष्मतम दृष्टि का मर्म-प्रकाश है । जिस प्रकार कविता में भावों का अन्तरस्थ हृत्स्पन्दन अधिक गम्भीर परिस्फुट तथा परिपक्व रहता है, उसी प्रकार छन्दबद्ध भाषा में भी राग का प्रभाव, उसकी शक्ति अधिक जाग्रत प्रबल तथा परिपूर्ण रहती है ।"[45]

ध्यातव्य है कि ऊपर दिये गये उद्धरण उस समय के लिखित हैं जब पन्त जी की अवस्था 25 वर्ष की थी तथा जो उनकी अपनी ही कविता के

---

43. पल्लव, पृ.-15.
44. वही, पृ.-27.
45. वही, पृ.-28.

परिचयस्वरूप लेख से है । इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि की कविता की भाषा उस समय किस प्रकार के भावबोध को लेकर वहन कर रही थी, साथ ही उस भाषा का स्वरूप कैसा था । स्वयं इस सन्दर्भ में पन्त जी ने लिखा है कि - "पल्लव काल तक मेरी लेखनी कलापक्ष की साधना करती रही है । "पल्लव" की भूमिका में मेरे कला-सम्बन्धी विचार व्यक्त हुए हैं, किन्तु उसके बाद की मेरी रचनाओं में इस युग के मान्यताओं सम्बन्धी संघर्ष की ही वाणी मिली है ।"[46] "पन्त और पल्लव" नामक निबन्ध में निराला ने पन्त पर भावों के अपहरण का आरोप लगाया है किन्तु इस बात पर विशेष रूप से यहाँ चर्चा करने की आवश्यकता इसलिए नहीं है क्योंकि पन्त जी ने स्वयं ऊपर की पंक्तियों में कह दिया है कि इस काल तक उनका जोर– "कला पक्ष की साधना" पर अधिक था । साथ ही एक बात और है कि इसपर काफी चर्चा अन्य विद्वान कर चुके हैं । स्वयं पन्त जी ने इस पर काफी कुछ कहा है । इसलिए अब मैं "पल्लव" की कुछ कविताओं को उद्धृत करते हुए इस चर्चा को आगे बढ़ाऊंगा ।

"पल्लव" की एक कविता है - "याचना" । इसमें कवि याचना भरे स्वर में कहता है —

बना मधुर मेरा जीवन !
नव-नव सुमनों से चुन-चुनकर
धूल सुरभि मधु रस हिम-कण,
मेरे उर की मृदु कलिका में
भर दे, कर दे विकसित मन ।

बना मधुर मेरा भाषण !
वंशी-सी ही कर दे मेरे
सरल प्राण और सरस वचन,
जैसा-जैसा मुझको छेड़ें,

46· मेरी मान्यताएं निबन्ध - सुमित्रानन्दन पन्त ।

बोलूँ अधिक मधुर, मोहन;
. . . . . .
रोम-रोम के छिद्रों से मा ।
फूटे तेरा राग गहन,
बना मधुर मेरा तन-मन ।

पुन: "स्वप्न" कविता में कवि कहता है कि –

"मौन-मुकुल में छिपा हुआ जो
रहता विस्मय का संसार
सजनि ! कभी क्या सोचा तू ने
वह किसका शुचि शयनागार ?"

पन्त जी की रहस्य-भावना में दो अवस्थाओं की ओर प्रमुख रूप से संकेत मिलता है - जिज्ञासा और मिलन । कवि की जिज्ञासा का मूल स्रोत है प्रकृति ।[47] स्वप्न कविता की उपर्युक्त पंक्तियों में कवि प्रकृति में अनन्त शक्तिमान को या यों कहें कि प्रकृति को ही सर्वशक्तिमान मानते हुए सर्वत्र व्याप्त देखता है तथा यह बोध कराना चाहता है कि आखिर प्रकृति किसकी निवास स्थान है, यहाँ कौन-सा और कैसा रहस्य छिपा हुआ है । वस्तुत: "प्रकृति का सचेतन रूप जगत् की वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है, अपने में खो जाने का "मौन-निमन्त्रण" देता है । वही सचेतन परमतत्व कभी नक्षत्रों और कभी तड़ित के लिए और कभी सौरभ और कभी लहरों के लिए जीव को निमंत्रण देता है ।"[48]

इस संग्रह की "परिवर्तन" कविता बहुत ही महत्वपूर्ण है । प्रकृति का सुन्दर रूप पन्त जी को सर्वत्र लुभाता रहा, किन्तु यहाँ थोड़ा उग्र रूप भी है । वही, बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भ्रूभर" यहाँ देखने को मिलेंगे । वस्तुत: डा॰ नगेन्द्र के शब्दों में - "कल्पना लोक की विहारिणी कवि-प्रतिभा का मर्त्यलोक की कठोरताओं से परिचय होते ही वह एक साथ उद्दीप्त एवं

47॰ छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा॰ सुषमा पाल, पृ॰-166.
48॰ मौन निमंत्रण, "पल्लव", पृ॰-38-39.

उद्‌बुद्ध हो उठी और विश्व में व्याप्त परिवर्त्तन की मार्मिक अनुभूति से तड़प उठी ।[49] वस्तुत: "पल्लव" की कविताओं की रचना कवि ने तब की जब -

हृदय के प्रणय-कुंज में लीन,
मूक कोकिल का मादक गान ।
बहा जब तन-मन-बन्धनहीन
मधुरता से अपनी अनजान ।।

उस समय कवि को प्रकृति की सुषमा ने विस्मय-विमूढ़ कर दिया था । वह घंटों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को देखा करता था । कोई अज्ञात आकर्षण उसके भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर उसकी चेतना को तन्मय कर देता था । इसीलिए तो कवि "पल्लव" की एक कविता में कहता है कि —

मुँद-नयन-पलकों के भीतर,
किस रहस्य का सुखमय-चित्र
गुप्त-बंधना के मादक-कर
खींच रहे सखि ! स्वर्ण विचित्र ?

"पल्लव" के बाद की कविताओं के सन्दर्भ में आचार्य वाजपेयी ने कहा है कि - "पल्लव" के उपरान्त उनमें जीवन-जीवन की शाब्दिक पुकार तो रही, किन्तु कल्पना तथा भावना के समूचे आवेग को जीवन के जाग्रत स्पन्दनों के साथ वे एकाकार नहीं कर सके हैं ।[50] "पल्लव" की समकालीन और उसके पूर्व की कृतियों में ग्रन्थि आती है किन्तु यहाँ जैसा कि हरिवंशराय बच्चन ने कहा है कि - "वैयक्तिक अभिव्यक्ति के साहस की कमी की वजह से इसकी रचना अधिक मर्मस्पर्शी नहीं बन पड़ी । इस अनुभव का अधिक कलामय रूप आगे चलकर "आँसू" और "उच्छ्वास" में निखरा, जो "पल्लव" में

49· सुमित्रानन्दन पन्त, डा· नगेन्द्र, पृ·-98.
50· सुमित्रानन्दन पन्त, नन्ददुलारे वाजपेयी, सं· शिवकुमार मिश्र, प्रस्तावना ।

सम्मिलित हुए ।[51]

"गुंजन" का प्रकाशन सन् 1932 में हुआ । इस कविता के सन्दर्भ में बच्चन जी ने लिखा है कि - इसके स्वर में विविधता है । कुछ कविताएं प्रकृति-प्रेम पर है, अन्तर केवल इतना है कि अब प्रकृति के प्रेमी ने मानव-प्रेम और मानव-सौंदर्य भी जान लिया है; साथ ही उसे किसी ऐसी सत्ता का भी विश्वास हो गया है जिसके लिए प्रकृति दर्पण-मात्र है । कई कविताएँ आत्मसंयम और साधना से सम्बद्ध है जिनमें कवि वैयक्तिक सुख-दु:ख, आकर्षण-विकर्षण, संघर्ष, चिन्ता से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है । आश्चर्य यह देखकर होता है कि कवि को बड़ी जल्दी सफलता मिल जाती है । वह अपने जीवन की अपूर्णता को मानव-जीवन की अपूर्णता में भूल जाता है, विश्व के लिए नव-जीवन की आवश्यकता का अनुभव करता है और उच्चादर्शों का प्रेमी बन जाता है । संक्षेप में "गुंजन" में प्रकृति के पुजारी, नारी के प्रेमी, मानवजाति के कल्याणा-कांक्षी और ईश्वर के चिर-विश्वासी कवि एवं द्रष्टा का स्वर हम एक साथ सुनते है ।[52] पन्त जी का इस काव्य-संग्रह के सम्बन्ध में कहना है कि - "गुंजन" की कविताओं से पहले मेरा ध्यान अपनी ओर कभी नहीं गया था । आगे पन्त जी ने लिखा है कि - सन् 1925 से लेकर सन् '30 तक इन पाँच वर्षों में मेरा काव्य, जो अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणों से वस्तुपरक से धीरे-धीरे भावपरक हो गया, वह शायद स्वाभाविक ही था । इन भावपरक प्रगीतों का सर्व प्रथम संग्रह "गुंजन" के नाम से सन् '32 में प्रकाशित हुआ । पुन: "गुंजन" के बारे में पन्त जी लिखते है कि - "गुंजन" - जैसा कि इस शब्द से ध्वनित होता है - मेरी भावनात्मक तथा चिन्तन-प्रधान रचनाओं का दर्पण है, जिसमें मेरा आत्मान्वेषी, जिज्ञासु व्यक्तित्व प्रतिफलित हुआ है । मेरे जीवन-विकास में यह बड़ी

---

51. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि सुमित्रानन्दन पन्त, सं.-हरिवंशराय बच्चन, प्रवेशिका, पृ.-14.
52. सुमित्रानन्दन पन्त, सं.-हरिवंशराय बच्चन, प्रवेशिका, पृ.-14-15.

अद्भुत बात हुई कि "पल्लव" काल के समाप्त होते-होते जब यहाँ "सुख सरसों, शोक सुमेरू" की धारणा के कारण मेरे भीतर जगज्जीवन के प्रति अत्यन्त विषाद तथा विरक्ति का दु:सह बोध जमा हो गया था, तब जैसे उसी अवसाद के भार के तीक्ष्ण दबाव के कारण मेरे भीतर एक अज्ञात आनन्द-स्रोत फूट पड़ा, जिसने मेरा ध्यान "यही तो है असार संसार" से सहसा हटाकर मन के भीतर भी प्रच्छन्द आनन्द-स्रोत की ओर आकर्षित कर दिया और इस अनुभूति ने जैसे "गुंजन" के सा रे ग म ही बदल दिये ।[53] "गुंजन" की कविता की पंक्ति "तू रे मधुर मधुर मन !" का कवि के ही अनुसार "मधुर-मधुर" शब्द आनन्द स्पर्शजनित व्यथा का परिचायक है । वस्तुत: यहाँ कवि के मन की यह एक प्रकार की आध्यात्मिक व्यथा अथवा "मेटाफिज़िकल ऐंग्विश" है ।[54] गुंजन-काल की आनन्द भावना ने कवि को जो एक प्रकार की तन्मयता प्रदान की, वही गुंजन के छंदों में एक श्लक्ष्ण सूक्ष्म संगीत बनकर मूर्त हुई है । "गुंजन" के प्रगीतों की छन्द-योजना अपनी एक विशेषता रखती है । "गुंजन" की पहली ही कविता के पदों में जैसे वह तन्मयता रजत-मुखर हो उठती है -

कन कन उपवन
छाया उन्मन उन्मन गुंजन
नव वय के कलियों का गुंजन ।
सुनहले सुनहले आम्र बौर
नीले पीले औ' ताम्र भौंर
रे गन्ध अन्ध हो ठौर-ठौर
उड़ पाँति पाँति में चिर उन्मन
करते मधु के वन में गुंजन ।[55]

53· पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ·-255-256.
54· वही, पृ·-258.
55· वही, पृ·-259.

"गुंजन" के बाद पन्त जी की कृति "ज्योत्सना" आती है। इसके सन्दर्भ में पन्त जी ने कहा है कि "मानव-जाति प्रलय-वेग से किस ओर जा रही है? मानव-सभ्यता का क्या होगा? इन भिन्न-भिन्न जातियों, वर्णों, देशों, राष्ट्रों के स्वार्थों में खोये हुए धरती के जीवन का भावी निर्माण किस दिशा को होना चाहिए। इन प्रश्नों और शंकाओं का समाधान मैंने "ज्योत्सना" नामक नाटिका के द्वारा करने का प्रयत्न किया।[56] "ज्योत्सना" में कवि ने जिस सत्य को सार्वभामिक दृष्टिकोण से दिखाने का प्रयत्न किया है "गुंजन" में उसी को व्यक्तिगत दृष्टिकोण से कहा है। इसमें पूर्व और पश्चिम की सभ्यता की तुलना करते हुए दोनों सभ्यताओं के पुरोधातत्वों के समन्वय पर कवि ने बल दिया है। "ज्योत्सना" के बाद पन्त जी की सन् 1936 में प्रकाशित रचना "युगान्त" आती है जो एक प्रकार से छायावादी युग के अन्त की उद्घोषणा करती है। पन्त जी लिखते हैं कि "युगान्त" तक मेरी भावना में नवीन के प्रति एक आग्रह उत्पन्न हो चुका था जिसे "द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र" अथवा "गा, कोकिल, बरसा पावक कण" - "रच मानव के हित नूतन मन"- आदि रचनाओं में मैंने वाणी दी है। इस नवीन भाव-बोध के सम्मुख मेरा पल्लव-युग का कलात्मक रूप-मोह (पल्लव की भूमिका में जिसका निदर्शन है) पीछे हटने लगा। मेरा मन युग के आन्दोलनों, विचारों, भावों तथा मूल्यों के नवीन प्रकाश से ऐसा आन्दोलित रहा कि "पल्लव" "गुंजन" की सूक्ष्म कला-रुचि को मैं अपनी रचनाओं में बहुत बाद को परिवर्तित एवं परिणत रूप में, सम्भवत: "अतिमा" "वाणी" के छन्दों में, पुन: प्रतिष्ठित कर सका हूँ जिनमें उसका विकास तथा परिष्कार भी हुआ है और उसमें कला-वैभव के साथ भाव-वैभव भी उसी अनुपात में अनुस्यूत हो सका है, जो "पल्लव" -"गुंजन" काल की रचनाओं में सम्भव न था।[57]

---

56. ज्योत्स्ना - संपादक पंत जी "भूमिका"।
57. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-305, राजकमल प्रकाशन।

"युगवाणी" के सन्दर्भ में पन्त जी का कहना है कि - अपने मानसिक चिन्तन और बौद्धिक परिणामों के आधारों का समन्वय मैंने "युगवाणी" के "युगदर्शन" में किया है । "युगदर्शन" में मैंने भौतिकवाद या मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का जहाँ समर्थन किया है, वहाँ उनका आध्यात्मवाद के साथ समन्वय और संश्लेषण भी करने का प्रयत्न किया है; "भौतिकवाद के प्रति" रचना में, मानव-जीवन की बहिर्गतियों का वैज्ञानिक निरूपण कर मैंने अपने वयोवृद्ध विचारकों में जीवन तथा जगत् के प्रति जो विरक्ति तथा उपेक्षा पायी जाती है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया है तथा अध्यात्म दर्शन के बारे में जो नवशिक्षित युवकों में भ्रान्त धारणाएं फैली है, उस पर भी प्रकाश डाला है । मैंने "युगवाणी" और "ग्राम्या" में मध्ययुग की संकीर्ण नैतिकता का घोर खण्डन किया है ।[58]

"ग्राम्या" में पन्त जी की सन् 1939 से 1940 तक की कविताएं संकलित है और इसका प्रकाशन सन् 1940 में हुआ । बहुत से आलोचक मानते है कि पंत जी का यह काव्य संग्रह उनकी काव्य-यात्रा का एक महत्वपूर्ण काल-खण्ड है । इसकी पृष्ठभूमि "युगवाणी" की है । इसमें ग्रामीणों की दीन हीन दशा, उनकी निश्छल भोली भावनाओं रीति-रिवाज पंत जी की दृष्टि को आकर्षित करता है । डा॰ नगेन्द्र ने इस संदर्भ में लिखा है कि - "युगवाणी" प्रगतिवादी पन्त का सिद्धान्त - वाक्य था, ग्राम्या उनका प्रयोग "युगवाणी" में पन्त जी अपने नवीन सिद्धान्तों की रूपरेखा निश्चित कर रहे थे । सिद्धान्त अमूर्त होते है । इसलिए "युगवाणी" में रस से पुष्ट मांस नहीं है । "ग्राम्या" तक वे सिद्धान्त स्थिर कर चुके थे और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त आधार चुन लिया है । स्वभावत: ग्राम्या की स्नायुओं में कवित्व का गाढ़ा रस प्रवहमान है, उसके अंग भरे हुए तथा यौवनपीन है ।[59]

----

58. रश्मि - संपादक पंत जी, भूमिका, पृ॰-15.
59. सुमित्रानन्दन पन्त - डा॰ नगेन्द्र, पृ॰-139.

ध्यातव्य है कि पन्त जी "ग्राम्या" के निवेदन में यह बात स्वीकार करते हैं कि - "इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है । ग्राम-जीवन में मिलकर उसके भीतर से, ये अक्षय नहीं लिखी गयी हैं क्योंकि ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता ।"[60] पन्त जी ने "ग्राम्या" के भावपक्ष और कलापक्ष के सन्दर्भ में कहा है कि - "ग्राम्या के भावपक्ष में - जिसे मैंने कोरी भावुकता से बचाकर सहानुभति पूर्वक, मान्यताओं के प्रकाश में संवारा है - लोक जीवन के कलुष-पंक धोने के लिए नवमानव की अन्तर पुकार है ।" "कला-पक्ष" के सम्बन्ध में उनका कहना है कि - "ग्राम्या में ग्राम-जीवन के भाव-क्षेत्र के अनुरूप कला-शिल्प वर्तमान है ।"[61]

ग्राम्या की कविताओं का कला-शिल्प दूधनाथ सिंह इस प्रकार निरूपित करते है - "ग्राम्या की कविताएं पंत जी के सारे प्रयासों में अप्रतिम है । उनकी सहजता, अनुभवगत सक्षमता और यथार्थ का गहरा, सर्वसुलभ और यथातथ्य चित्रण सहसा चकित कर देते है । व्यंजना की अन्यतम गहराइयों में प्रवेश करके अर्थों की अनेक दिशाएं संकेतित करने वाले कवि का अभिधा के सीधे-सादे वर्णनात्मक धरातल पर उतर आना निश्चय ही प्रशंसनीय है" ··· "ग्राम्या या युगवाणी का काव्य-सौंदर्य उसके यथार्थ की व्यथा में अंकित है । पहली बार भारतीय जनसमूह को इतने निकट से और इतनी निर्मम तटस्थता से देखने का प्रयास सम्पूर्ण भारतीय कविता में हुआ है । ··· ग्राम्या की कविताएं अभिव्यक्ति और भाषा या शिल्प-तन्त्र के स्तर पर ओज भरे ऐश्वर्य का निराकरण करती हैं । इस तरह कथ्य के अनुरूप ही पंत जी ने एक नयी भाषा, शिल्प-तन्त्र और प्रणाली का आविष्कार किया है ।[62]

60· ग्राम्या - सुमित्रानन्दन पन्त, निवेदन.
61· शिल्प-दर्शन, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ·-113.
62· तारापथ की भूमिका "सम्पूर्णता का कवि" दूधनाथ सिंह, पृ·-33-34.

"ग्राम्या" की चर्चा के बाद "कला और बूढ़ा चाँद" के पूर्व के काव्य संग्रहों में स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल, खादी के फूल, युगपथ, उत्तरा, रजतशिखर शिल्पी, अतिमा, सौवर्ण तथा वाणी है। पन्त जी के अनुसार स्वर्ण किरण में स्वर्ण का प्रयोग नवीन चेतना के प्रतीक के रूप में है। "स्वर्णधूलि" का धरातल मुख्य रूप से सामाजिक है। "स्वर्णकिरण" की चेतना-प्रधान कविताओं की नवीन चेतना मानो धरती की धूलि में मिलकर एक नवीन सामाजिक जीवन के रूप में यहाँ अंकुरित हो उठी है। "स्वर्णधूलि" के सन्दर्भ में पन्त जी कहते है कि - स्वर्णधूलि में आर्यवाणी के अन्तर्गत वैदिक-साहित्य के अध्ययन से प्रभावित जो मेरी रचनाएं है, वे अंशत: वैदिक छन्दों के अनुवाद नहीं है। मेरे भावबोध ने उन मन्त्रों को जिस प्रकार ग्रहण किया है, वही उनका मुख्य तत्व और स्वर है। कहीं-कहीं तो मैंने उन मंत्रों की व्याख्या कर दी है।[63] "स्वर्णकिरण" में सांस्कृतिक शक्तियों के समन्वय का प्रयास है। "स्वर्णकिरण" में पन्त जी ने भिन्न-भिन्न देशों और युगों की संस्कृतियों को विकसित मानव-वाद में बाँधकर भू-जीवन की नवीन रचना की ओर संलग्न होने का आग्रह किया है। "उत्तरा" की भूमिका में पन्त जी ने स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि और उत्तरा पर अरबिन्द दर्शन के प्रभाव को स्वीकार किया है - ऐसा मैं प्रथम अध्याय में ही कह चुका हूँ। साथ ही यह भी बता चुका हूँ कि "ग्राम्या" के प्रकाशन के तुरन्त बाद पन्त जी के जीवन में एक वैचारिक उथल-पुथल हुई। ऐसे ही समय वह अरबिन्द-दर्शन से परिचित हुए और इस अरबिन्द-दर्शन के परिचय ने उन्हें बहुत ही प्रभावित किया जिसको हम "ग्राम्या" के बाद की कृतियों में देख सकते है। पन्त जी "अरबिन्द-दर्शन" के प्रभाव को स्वयं स्वीकार भी करते है। यह भी मैं प्रथम अध्याय में बता चुका हूँ किन्तु पन्त जी ने "आध्यात्मिकता के पैर सदैव पृथ्वी पर स्थिर रखे है। मानवता के स्वर्ग को

---

63. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-307.

भौतिकता के ही हृदय-कमल में स्थापित किया है । आध्यात्मिकता के निष्क्रिय, निषेधात्मक तथा ऋण-पक्ष की अवहेलना कर उसे भू-जीवन विकास तथा जन-मंगल का साधन बनाने का प्रयत्न किया है । दूसरे शब्दों में कहें तो - शक्ति, आनन्द अथवा ईश्वर प्राप्ति के लिए भू-जीवन का त्याग करने की आवश्यकता नही, उसके लिए नवीन रूप से लोक-जीवन निर्माण करने की आवश्यकता है ।[64] स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि में उनकी शैली में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ । जिस "सहज-स्फुरण" या "इंट्यूशन" की चर्चा "कला और बूढ़ा चाँद" के सन्दर्भ में की जाती है, वह स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि में भी है । हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है कि -"जग-जीवन को देखने-समझने के लिए मनुष्य के पास भावना और बुद्धि का ही साधन नहीं, उसके पास इससे भी बड़ा साधन है - सहज स्फुरण (इंट्यूशन) का, जिसे सूक्ष्म प्रेरणा, दिव्यप्रेरणा, सूक्ष्म-चेतना, दिव्य-चेतना, सूक्ष्म सृष्टि आदि में उत्तरोत्तर विकसित कर दिव्यदृष्टि में परिणत किया जा सकता । "स्वर्णकिरण", "स्वर्णधूलि" में ऐसी कविताओं का प्राधान्य है जिनमें सहज स्फुरण का आश्रय लिया गया है, पर भावना और बुद्धि के स्रोत क्षीण नहीं हो गये है, कहीं-कहीं तो वे अधिक मार्मिक और तार्किक हो गये है ।"[65]

कई आलोचकों ने "युगवाणी" से "उत्तरा" तक की रचनाओं में कला-ह्रास का आरोप लगाया है । पन्त जी का इस सन्दर्भ में कहना है कि -"कुछ आलोचकों को "युगवाणी" से "उत्तरा" तक की मेरी रचनाओं में कला-ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होते है, जिसे मै दृष्टिभेद की बिडम्बना कहूँगा । "उत्तरा" को सौंदर्यबोध तथा भाव-ऐश्वर्य की दृष्टि से, मै अब तक की अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति मानता हूँ । आगे उन्होंने लिखा है कि - "उत्तरा" के पद नवमानवता

64· पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ·-313-314.
65· आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि पन्त, सं·- बच्चन प्रवेशिका, पृ·-19.

के मानसिक आरोहण की सक्रिय चेतन आकांक्षाओं से अंकृत हैं, चेतना की ऐसी क्रियाशीलता मेरी अन्य रचनाओं में नहीं मिलती है —

स्वप्नों की शोभा बरस रही
रिम झिम-झिम अम्बर से गोपन ।
. . . . . .
लो आज झरोखों से उड़कर
फिर देवदूत आते भीतर ।
. . . . . .
कैसी दी स्वर्ग-विभा उड़ेल
तुमने भू मानस में मोहन ।"[66]

पन्त जी ने "स्वर्णकिरण" और बाद की रचनाओं के सन्दर्भ में लिखा है कि - स्वर्णकिरण और बाद की रचनाओं का कलापक्ष भी भाव-सौंदर्य-मण्डित अन्तर्दीप्त एवं मांगल्य शक्ति-सम्पन्न है; यह दूसरी बात है कि उनमें राजनीतिक दलबन्दी की रिक्त पुकार तथा रूक्ष-प्रचार न हो ।[67] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पन्त जी को भविष्य दृष्टि से युक्त कवि कहते हुए कहते हैं कि - "युगान्त-ग्राम्या" युग में समाज तथा मनुष्य का आदर्श प्रस्तुत करने में, अरबिन्द दर्शन के प्रभाव वाले परवर्ती काव्य में भी भावी समाज, भावी मनुष्य और भावी मनुष्यता के रूप-निर्धारण में पन्त ने सारा कार्य अपनी कल्पना के बूते पर ही किया है । पन्त का यह भविष्य-दर्शन कितना ठोस है अथवा कितना वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है, यह अलग बात है । सचाई यह है कि पन्त की दृष्टि अपने काव्य में अधिकांशत: भविष्योन्मुखी रही है । वह भविष्य के वक्ता और द्रष्टा के रूप में ही प्रमुखत: हमारे सामने आये हैं । यह तथ्य भी अन्य छायावादी कवियों से उन्हें विशिष्टता प्रदान करता है ।[68]

---

66. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-306,
67. वही, पृ.-309.
68. सुमित्रानन्दन पंत - नन्ददुलारे वाजपेयी, सं.- शिवकुमार मिश्र, प्रस्तावना, पृ.-14-15.

पन्त जी के स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि के बाद के तथा "कला और बूढ़ा चाँद" की पूर्ववर्ती "वाणी" काव्य-संग्रह की कविताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए संक्षेप में मैं डाक्टर दूधनाथ सिंह के निम्न वक्तव्य से पन्त जी के काव्य-संग्रहों की इस चर्चा को समाप्त करूँगा । दूधनाथ सिंह लिखते हैं कि - पन्त जी के इस द्वितीय उत्थान की काव्य-रचना का द्वितीय-सोपान "स्वर्ण-किरण" से चलकर "वाणी" में (स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, अतिमा, वाणी आदि) सम्पन्न होता है । यह परिवर्तन फिर एक नये प्रकार के भाव-पट की सूचना देता है । कवि की अनुभूति वस्तु-जगत को समेटती हुई उस बौद्धिक चेतना से ऊपर उठकर एक सूक्ष्म अतिमाननीय चेतना को ग्रहण करती लगती है । इस परि-वर्तन के पीछे भी कवि की वही व्याकुलता और अनुभूति का अपार असन्तोष और प्रसार कारण है । लेकिन उसमें भी एक संगति है । अर्थात् वह भी सकारण है । शुद्ध भावनात्मक काव्य की जगह विचारात्मकता का यह आग्रह पन्त जी के लिए नया नहीं है । उसके सूत्र "गुंजन" या "युगान्त" की कविताओं या पल्लव की "शिशु" और "मौन निमन्त्रण" तथा "परिवर्तन" जैसी लम्बी कविता में आसानी से ढूँढे जा सकते हैं । लेकिन यह आग्रह शुद्ध विचार-काव्य का ही आग्रह नहीं है । उसमें चिन्तन के अन्तराल हैं जहाँ कविता के माध्यम से अन्दर की कर्मण्यता और काव्य-समृद्धि तथा संस्कारों की गहन संवेदना अनायास ही प्रकट होती चली है । "ग्राम्या" और "युगवाणी" की वस्तुवादी मनोभूमि के अन्दर से उत्पन्न "तथ्य" का यथार्थ की गहरी वेदना का स्थान यहाँ एक शान्त, निर्मल, आस्थाशील और निर्माणोन्मुख सक्रियता ने ले लिया है । यह सक्रियता ऊपर से जितनी शान्त और विरल दिखती है, अन्दर से उतनी ही गहन और ठोस है । यहाँ "युगान्त" का "क्रान्तिकारी" मन फिर "विकास-कामी" और "निर्माणकामी" हो उठता है । यहाँ से प्रतिक्रिया और बाहरी छटपटाहट शेष होनी शुरू हो गयी है और उसकी जगह एक गहरी उद्‌बुद्ध दृष्टि ने ले ली है । यह अन्तर उद्‌बोधन ही "स्वर्णकिरण", "स्वर्णधूलि", "अतिमा", और

"वाणी" की कविताओं का मूल उपादान है। भाषा और शिल्प-तन्त्र में सहजता वर्तमान है। शब्द-चयन में शब्दकोश की परिधि बढ़ गयी है और मन्दचूड़ से लेकर अलंकार-रहित शब्दों का प्रयोग एक साथ ही किया गया है। कहा जा सकता है कि यहाँ से पन्त जी की कविता की मनोभूमि उस द्रष्टा की मनोभूमि बन जाती है जिसके लिए वेदों में ऋषि शब्द का आख्यान किया गया है।"[69]

वस्तुत: "पन्त जी का समस्त काव्य अन्तर्मुखता का काव्य न होकर आत्मोकर्ष का काव्य है। यह आत्मोत्कर्ष अपनी समग्र संरचना में एक सार्वभौमिक शुभेच्छा तक ले जाता है। इसीलिए उनका काव्य अतीतोन्मुखी न होकर वर्तमान के फलक पर भविष्योन्मुखी काव्य है। यह सार्वभौमिक शुभेच्छा ही वह तत्व है, जिसके भीतर से कवि पन्त ने विश्व-मानव और नव-मानव की परिकल्पना को अपनी कविता में सार्थक किया है। अपनी काव्य-सम्पदा के भीतर से उन्होंने एक नये और निजी अध्यात्म की रचना की है। यह अध्यात्म अपनी मंगल-कामना में निजी होते हुए भी "स्व" की भावना से पूर्णतया मुक्त है।"[70]

"कला और बूढ़ा चाँद" के पूर्ववर्ती काव्यसंग्रहों की इस संक्षिप्त विवेचना के बाद यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि पन्त जी अपनी काव्य-यात्रा के प्रत्येक पड़ाव से एक नये ज्ञान, नयी सोच और नवीन भावना के साथ पुन: आगे बढ़ते हैं। हाँ, यह बात जरूर दिखायी देती है कि विकास के अन्त:सूत्र हर कृति को दूसरी से जोड़ते हैं। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण खोज होती यदि हम उन तत्वों पर विवेचन करते जिससे कवि की एक काव्य-कृति अपना विकास दूसरी काव्यकृति में कैसे सूचित करती है। साथ ही कौन-कौन से नये काव्यगत

---

69. तारापथ - दूधनाथ सिंह, "सम्पूर्णता का कवि", पृ.-41-42.
70. वही, पृ.-51.

मूल्य पहली की तुलना में दूसरी में जुड़ जाते है या किन-किन काव्यगत मूल्यों को आली रचना त्याग देती है । किन्तु न तो यहाँ उतना विवेचन करने का समय है और न ही इसकी अपेक्षा । अत: अगली पंक्तियों में मैं केवल यही दिखाने की कोशिश करूँगा कि "कला और बूढ़ा चाँद की कविताएँ क्यों अपने में एक खास किस्म के वैशिष्ट्य को धारण करती हैं तथा पूर्ववर्ती काव्यकृतियों से कितनी दूर तक अलग हैं ।

"कला और बूढ़ा चाँद" में बूढ़ा चाँद नयी कलात्मक अभिव्यक्ति लेकर आया है । बाहरी गर्द-गुबार, आवरण से ढँके होने के बावजूद उसमें "अंगार" की ज्वाला है । वही "पुराना चाँद" नूतन आशा है । कला के लिए उसमें समग्र प्रकाश है । कला की कृश बाहों में उसकी स्थिति मलिन जरूर हुई थी किन्तु लुप्त नहीं हुई थी । अब वह नये कलात्मक हाथों से पूर्ण साज-सज्जा के साथ आया है वह केवल "कला के विछोह में म्लान था" और अब "नये अधरों का अमृत पीकर अमर हो गया ।"[71]

"कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं के सन्दर्भ में हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है कि - इन रचनाओं को पंत जी की पूरी रचनावली के बीच रख दें तो ये अपनी सत्ता और दृयत्ता अलग उद्घोषित करेंगे । यदि आप पंत जी की रचनाओं से परिचित है, तो आप सहज ही मुझसे सहमत हो सकेंगे । इन कविताओं को खड़ी बोली की समस्त कविता के बीच रख दें, जिसमें आज की अद्यतनतम कविताएँ भी सम्मिलित हैं, तो भी इनका व्यक्तित्व, सबसे अलग परिलक्षित होगा । मेरी समझ में इसका कारण है, सबसे अलग पंत जी का व्यक्तित्व, सबसे अलग पंत जी की सूक्ष्मानुभूति और तदनुरूप उसकी अभिव्यक्ति कर सकने की पंतजी की सक्षमता ।[72] बच्चन जी ने एक महत्वपूर्ण बात और

71.. "कला और बूढ़ा चाँद" में "बूढ़ा चाँद" कविता, पृ.-16.

72. नये पुराने झरोखे, निबन्ध संग्रह, सन् 1932-61 में लिखित, प्रकाशक, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ.-220.

कही है - "मेरी ऐसी धारणा है कि "कला और बूढ़ा चाँद" रचनाओं की शैली एक विशिष्टता लिये हुए गद्य-काव्य की शैली है - आप चाहें तो उन्हें गद्य-गीत भी कह सकते हैं। इसी को पन्त जी ने अधिक कवित्वपूर्ण ढंग से "रश्मिपदी काव्य" कहा है। गद्य से गद्यात्मकता का संस्पर्श अथवा संगति अभी हम अपने मन से नहीं हटा सके, हालाँकि हिन्दी में बहुत ही कवित्वपूर्ण भावपूर्ण, रसपूर्ण, गद्यकाव्य लिखा जा चुका है। जहाँ तक "कला और बूढ़ा चाँद" की विधा की बात है, मेरी यह निश्चित धारणा है कि उसका संबंध गद्य-काव्य की उस परम्परा से है जिसका बीजारोपण छायावाद की कविता के साथ ही साथ रामकृष्णदास की "साधना" §1916§ से हुआ, जो वियोगी हरि §तरंगिणी§, चतुरसेन शास्त्री §अंतस्तल§ तेजनारायण "काक" §मदिरा§, रामकुमार वर्मा §हिमहास§ की कृतियों में पल्लवित तथा दिनेशनंदिनी चोरड़्या §शबनम§, डा॰ रघुबीर सिंह §शेष स्मृतियाँ§ और माखनलाल चतुर्वेदी §साहित्य देवता§ की कृतियों में पुष्पित फलित हुई; न कि मुक्त छन्द की उस परम्परा से जो महाकवि निराला से आरम्भ होकर, अज्ञेय गिरिजाकुमार माथुर, भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुबीर सहाय, कुँवरनारायण आदि कवियों में विकसित हुई। मैं फिर दुहरा देना चाहता हूँ कि यह केवल पंत जी की नयी विधा, कथन अथवा शैली के लिए कहा जा सकता है। कथ्य अथवा विषय-वस्तु से वह विशिष्टता आयी है जो उनके गद्य-काव्य को परंपरागत गद्य-काव्य से अलग करती है और एक नवीन प्रतीकात्मकता, सूक्ष्मता अथवा प्रोज्ज्वलता देती है।[73]

ध्यातव्य है कि फ्रायड ने अवचेतन की खोज की थी, तो महर्षि अरबिन्द ने अतिचेतन से साक्षात्कार किया था। पंत जी का मस्तिष्क "ज्योत्सना" काल से ही इस खोज में लगा हुआ था किन्तु महर्षि अरबिन्द के दर्शन तथा भागवत जीवन §लाइफ डिवाइन§ से परिचित होने पर उनकी यह आकांक्षा पूर्ण

73• नये पुराने झरोखे, पृ॰-220-221.

हुई तथा "अतिचेतन" में उन्हें अपने प्रश्नों का उत्तर मिला । "शिल्पी" में हमें क्षत-विक्षत फ्रायड की प्रतिमा का दर्शन कीचड़ में डूबे हुए गड्ढे में होता है, जो अवचेतन के अंधकार में खो गयी थी तथा जिसका मुख कुण्ठाओं की रेखाओं से जर्जरित हो गया था । इसके बाद "स्वर्णकिरण" में पन्त जी अतिचेतन की ओर झुकते हैं । तात्पर्य यह कि अरबिन्द-दर्शन से प्रभाव ग्रहण कर रचना आरम्भ करते हैं जिसकी मनोमय और कवित्वपूर्ण परिणति "कला और बूढ़ा चाँद" में होती है । "स्वर्णकिरण", "स्वर्णधूलि" की आध्यात्मिक शुष्कता "कला और बूढ़ा चाँद" में कवित्वपूर्ण और रसमय होकर सहज ढंग से स्फुरित होती है । इन कविताओं के भावलोक को हम पल्लवकालीन पन्त में थोड़ा-बहुत देख सकते हैं किन्तु विचार-लोक ज्योत्सा स्वर्णकिरण-स्वर्णधूलि और उसके बाद का ही है । हाँ, यह बात ज़रूर है कि अरबिन्द-दर्शन वैसा नहीं यहाँ दिखायी देता जैसा उनकी अन्य अरबिन्द-दर्शन से प्रभावित कृतियों में यह देखा जाता है । वस्तुत: इस दृष्टि से भी ये कविताएँ अपनी विशिष्टता द्योतित करती है । इसमें अरबिन्द-दर्शन की शब्दावली के कुछ रूढ़ शब्द जरूर दिखायी दे रहे हैं किन्तु विचार तत्व का अभाव है । दूसरे शब्दों में कहें तो शब्द ही भाव भी है तथा जब कवि प्रतीकों में बोलने की बात कहता है, तो वस्तुत: इसका मतलब है कि इन कविताओं में प्रयुक्त शब्द अपने सन्दर्भ एवं प्रसंग के अनेक भावपूर्ण कथ्यों के साथ अटल होकर प्रयुक्त हुए हैं । पन्त जी ने "उत्तरा" को सौंदर्य बोध और भाव ऐश्वर्य की दृष्टि से अपने काव्य-ग्रन्थों में सर्वोपरि माना है । कला और बूढ़ा चाँद में विचार, मूल्य और आदर्श लय हो जाता है । ध्वनियों, छन्दों, शब्दों और भावों की किल्लत आ जाती है । सौंदर्य जरूर सूक्ष्मानुभूति में बदलकर सहज स्फुरण के द्वारा काव्य-रचना में योग देता है । एक "द्रष्टा" की हैसियत से कवि कहता है कि —

"मैंने
हिमालय के

शुभ्र श्वेत मौन को
फूंका,

मानस शंख से
छोटा था वह ।"

शमशेर जी की यह बात महत्वपूर्ण लगती है कि "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताएं "हमसे कुछ विशेष संस्कार और शिक्षा की अपेक्षा" [74] रखती है क्योंकि इस अनुभव में अवगाहन "स्व" से ऊपर उठकर ही हो सकता है । शान्ति जोशी ने ठीक ही लिखा है कि - 'कला और बूढ़ा चाँद का मानसिक धरातल, उसकी भावभूमि, जड़वाद, भूतवाद, अध्यात्मवाद या अरबिन्दवाद के शब्दों में नहीं समझी जा सकती है । मात्र अनुभूति व्यापक अनुभूति और तज्जनित आनन्द का यह काव्य सहजबोध एवं उच्च उन्मेषमय-रश्मिमदी होने के कारण प्रतीकों एवं बिम्बों की भाव-भंगिमा का मधुर उल्लास है । इसके विचार होते हुए भी भावोन्मेष में बाधक नहीं बनते । चिन्तन नन्दद्विक आनन्द में ही घुल जाता है अथवा इसका आनन्द और अनुभूति बुद्धि-विरोधी नहीं है, वरनबुद्धि से परे है । इसीलिए "कला और बूढ़ा चाँद" को सिद्धान्तवादिता की चौखट में नहीं जकड़ा जा सकता ।" [75]

जैसा कि मैं प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में ही चर्चा कर चुका हूँ कि "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताएं सहज स्फुरण से प्राप्त सत्यों पर आधारित है तथा इन स्फुरणों की अभिव्यंजना कवि को प्रतीकों के माध्यम से करनी पड़ी है और प्रतीकों की अर्थगाम्भीरता नित नयेनये प्रयोग के साथ ही बढ़ती जाती है । इसलिए जब मैं पन्त जी के प्रारम्भिक सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह "पल्लव" "गुंजन" या "युगवाणी" ग्राम्या के काव्यशिल्प के बरक्स इन कविताओं

---

74. शमशेर : कृति, 21, पृ.-12.
75. सुमित्रानन्दन पन्त - जीवन और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ.-369.

के काव्यशिल्प को देखता हूँ, तो इसकी एक अलग इयत्ता दिखायी पड़ती है। बच्चन जी ने इसकी ओर तरफ पूर्वोक्त कथन में इशारा किया है। तात्पर्य यह कि ये कविताएँ पन्त जी की पूर्ववर्ती काव्यकृतियों की कविताओं से बिल्कुल भिन्न हैं। हाँ, भावबोध के स्तर पर जरूर ये अपनी जड़ें पल्लव-कालीन पन्त में सूचित करती हैं। किन्तु यहाँ भी एक खास बात है जहाँ पल्लव या उसके पूर्व की कविताओं में प्रबल भावावेग की या भावोच्छ्वास की अभिव्यक्ति कवि नित नये-नये शब्द के माध्यम से करता रहा है, वहीं इस काव्य-संग्रह में भावों की प्रबलता अभिव्यक्ति में बाधक हो गयी है इसलिए कवि ने प्रतीकों के माध्यम से भावावेग के अन्तिम चरम उत्कर्ष भावविचारहीन शान्ति में काव्य को रूप दिया है। इसलिए कवि संबोधन के स्वर में कहता है कि —

ओ सृजन उन्मेष,
मन ने बहुत काट छाँट की,
पुराने ठूँठ उखाड़े,
रद्दी जड़े खोदीं,
भद्दी डालियाँ
काटीं तरासीं, —
इधर उधर
कला-शिल्प के हाथों से
भावबोध के स्पर्शों से
सहस्रों नये बसन्त सँवारे।
अभी असंख्य शरदों को
अपने अंग
पावक में बहलाकर
रूप ग्रहण करना है।
आज मुझे
नये स्वप्न
नये जागरण
नये चैतन्य की कोपलें
दिखायी देती हैं।

सर्वत्र

कोपलें ही कोपलें
आँखों के सामने
भाव भरा मुख
स्वप्न भरी चितवन
खोल रही हैं । [76]

और इस प्रकार पन्त जी को कोपलें ही कोपलें दिखायी दे रही हैं । वस्तुत: इसी अर्थ में पन्त जी को "भविष्य दृष्टि से युक्त कवि" कई आलोचकों ने कहा है । भविष्य की जितनी चर्चा हो सकती है, उतनी चर्चा पन्त जी ने अपनी कविताओं में की है । उनकी आखें उस भाग्यशाली व्यक्ति की आँखें है जिनमें सदैव भाव भरा मुख और भावी सुखद कल्पना से युक्त चितवन वाला मुखड़ा आता है । वस्तुत: हास-हुलास, आशायुक्त भविष्य अन्तत: विचारों के मन्थन, दर्शनों के चिन्तन, भावनाओं के उद्दीपन के साथ अनेक काव्यगत प्रयोगों के बाद इन कविताओं में आया है ।

.....

---

76. "कला और बूढ़ा चाँद", "कोपलें" कविता से उद्धृत, राजकमल प्रकाशन ।

अध्याय - 3

कला और बूढ़ा चाँद का शिल्पगत सौन्दर्य

"कला और बूढ़ा चाँद" के शिल्पगत सौन्दर्य पर विचार करते हुए अंग्रेजी के रोमान्टिक कवि शेली की यह बात बरबस याद आ जाती है कि "कविता सर्वाधिक सुखद क्षणों की लेखा-जोखा है।" सम्भवत: "कला और बूढ़ा चाँद" की कवितायें लिखते समय पन्त जी जिस मूड और मन:स्थिति में रहे होंगे, उसी मूड और मन:स्थिति के सम्बन्ध में शेली ने कविता के सन्दर्भ में उपर्युक्त बात कही होगी। शान्ति जोशी ने भी इन कविताओं के सन्दर्भ में लिखा है कि - यहाँ न छायावादी भावुकता है, न रहस्यवादी अलौकिकता और न प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी विद्रोह और निराशा का स्वर। यहाँ तो मात्र आनन्द है - आत्म तन्मयता का आनन्द, वसुधैव कुटुम्बकम् का आनन्द, पवित्र अनुभूति का आनन्द। बूढ़े चाँद की इस कला में भाव, भाषा और विचार एक दूसरे से आलिंगनबद्ध होकर शरद-ज्योत्सना में रास रचते है तथा पृथ्वी और स्वर्ग, धरती और आनन्द एक दूसरे का वरण कर लेते है। न यहाँ आदर्श-यथार्थ, विज्ञान-अध्यात्म का संघर्ष है और न कला छन्दों में बद्ध है। छन्द, अलंकरण आदि काव्य के वाह्य रूप भावोन्मेष एवं सहज स्फुरण के प्रति विनत है। यह काव्य कवि के ही शब्दों में "रश्मिपदी" है। अत: यह स्वत: नियंत्रित

है । छन्द के बन्धनों से मुक्त छन्द मुक्त है ।"[1] वस्तुत: इन कविताओं में पन्त जी बूढ़े चाँद में कला की नवीन सम्भावनाएँ खोजते हुए कविता के शिल्प-गत सौन्दर्य के लिए जिस "नयी नींव" को डालते हैं, वह "नयी नींव" उनको यह कहने के लिए प्रेरित करती है कि —

मैं शब्दों की
इकाइयों को रौंदकर
संकेतों में
प्रतीकों में बोलूँगा
उनके पंखों को
असीम के पार
फैलाऊँगा

शिल्पगत सौन्दर्य से तात्पर्य है - काव्यगत वस्तु के रचने का ढंग या यों कहें कि रचना-विधान का सौष्ठव । एक रचनाकार अपने अन्तर में उठे भावनाओं और विचारों के उद्वेलन को व्यक्त करने के लिए जिस तरीके को अपनाता है, उसे ही शिल्प-विधान के नाम से अभिहित किया जाता है । वस्तुत: यह वही ढंग है, जिससे टालस्टाय के शब्दों में कहें तो, कलाकार अपनी मनोगत अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाने में सफल होता है ।[2] "कला और बूढ़ा चाँद" के शिल्प की भी खूब चर्चा हुई है और जहाँ तक शैली का सवाल है तो पन्त जी ने इस कृति में नयी कविता वाली शैली को अपनाया है । एक बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । वह यह कि इन कविताओं में अन्तश्चेतनावाद का घनीभूत भावनात्मक विकास अपने चरमोत्कर्ष पर है । तात्पर्य यह कि अरबिन्द का प्रभाव बरकरार है लेकिन वैसा नहीं जैसा कि स्वर्णकिरण और "स्वर्णधूलि" आदि में यह देखा जाता है । प्रकृति को काव्य-विषय बनाने में पन्त जी ने "पल्लव" काल से ही ज़रा भी कोताही नहीं की किन्तु इन कविताओं में पन्त

---

1. पन्त-जीवन और साहित्य - शान्तिजोशी, पृ.-341-42.
2.

जी का प्रकृति प्रेम एक अन्तर के साथ आता है । दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन कविताओं में पन्त जी ने जिन प्राकृतिक प्रतीकों बिम्बों रूपकों आदि का प्रयोग किया है, वे एक प्रकार से वैदिक प्रकृति के रूप-चित्र का नये सिरे से स्मरण दिलाते हैं और उसी प्रकार की भाषा में बात करते दिखायी पड़ते हैं जैसे वैदिक ऋषि । उदाहरण के लिए यहाँ "भाव" शीर्षक कविता को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा –

चन्द्रमा
मेरा यज्ञ कुंड है
शोभा के हाथ
हवि अर्पित करते हैं ।
भावना कल्पना
स्वप्न प्रेरणा —
सभी चरू हैं,
समिधा है
आहुति है ।

ओ आनन्द की लपटों
उठो ।
ओ प्रीति, ओ प्रकाश,
जगो ।

यह सौन्दर्य यज्ञ है,
कला यज्ञ ।
शांति हो होती है ।

आत्मा
इन्द्रियों की
सुनहली लपटों का
अमृत पान कर रही है ।

प्राणों की
स्वत: जलने वाली समित्
जल जल उठती है ।

अवचेतन की गुहाएं
औषधियों से दीप्त हैं ।

यह सूक्ष्म यज्ञ है,
भाव यज्ञ ।
चन्द्रमा ही
यज्ञ वेदी है ।

यज्ञ, चरु, समिधा, आहुति, औषधियाँ आदि वैदिक कर्मकाण्ड के शब्द हैं । वस्तुत: वैदिक प्रतीकों का प्रयोग पन्त जी ने खुलकर यहाँ किया है और प्रकृति के वर्णन को एक सांस्कृतिक रंग देने की कोशिश की है । दूसरे शब्दों में कहें तो वैदिक आध्यात्मवाद और आदिम प्रकृति दोनों यहाँ घुलमिल गये हैं । यहाँ रहस्यवाद का स्वर बहुत ही गहरा है । यह "पल्लव" के रहस्यवाद जैसा बहिर्मुख रहस्यवाद नहीं है बल्कि इन कविताओं की रहस्यभावना बहिर्मुख की अपेक्षा अन्तर्मुख अधिक है । इसको "धेनुएं" कविता से हम बहुत ही अच्छी तरह समझ सकते हैं —

ओ रंभाती नदियो
बेसुध
कहाँ भागी जाती हो ?
बंशी रव
तुम्हारे ही भीतर है ।

ओ फेन गुच्छ
लहरों की पूंछ उठाए
दौड़ती नदियो

इस पार उस पार भी देखो, —
जहाँ फूलों के कूल
सुनहले धान के खेत हैं ।
कल कल छल छल
अपनी ही विरह व्यथा
प्रीति कथा कहते
मत चली जाओ ।

सागर ही तुम्हारा सत्य नहीं ।
वह तो गतिमय स्रोत की तरह
गतिहीन स्थिति भर है ।
तुम्हारा सत्य तुम्हारे भीतर है । —

राशि का ही अंत
अंत नहीं, —
गुण का अंत बूंद-बूंद में है ।

ओ दूध धार टपकाती
शुभ्र प्रेरणा धेनुओ,
तुम जिस वत्स के लिए
व्याकुल हो
वह मैं ही हूं ।

मुझे अपना धारोष्ण प्रकाश
अनामय अमृत पिलाओ ।
अपनी शक्ति
अपना जव दो ।

मुझे उस पार खड़ी
मानवता के लिए
सत्य का वोहित्थ
खेना है ।

ओ तटसीमा में बहने वाली
सीमाहीन स्रोतस्विनियों,
मैं जल से ही
स्थल पर आया हूं ।

नदियों को रंभाती कहकर कवि धेनुओं के रूपक में बाँधते हुए इस कविता की शुरुआत करता है । नदी की कल-कल, छल-छल की ध्वनि उसे ऐसी लगती है मानो वह कृष्ण की वंशी की धुन हो । नदियों की गति और प्रवाह की बेरोकटोक निरन्तरता कृष्ण की बाँसुरी की धुन को सुनने के लिए रंभाती दौड़ी जाती हुई गायों जैसी है । फिर भी विरोधाभास यह कि कवि "वंशी

रव" जैसे आकर्षक रहस्य को नदियों के कल कल छल छल में खोजता है और प्रश्न करता है कि वह कौन-सा गन्तव्य स्थान है, वह कौन-सा आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु है जिसके लिए तुम बेसुध प्रवहमान हो । कृष्ण की बाँसुरी की आवाज को सुनकर गायों का बेसुध दौड़ना तो तर्कसंगत लगता है किन्तु तुम्हारी वंशी की धुन तो तुम्हारे ही भीतर है, फिर इस प्रवाह, इस गतिमयता का कारण ? तुम्हारे दोनों किनारों से लगी हुई फूलों की पंक्ति है और उससे सटे हुए धान के खेत हैं उनको तुम्हारी प्रवहमान जलधारा की जरूरत पड़ सकती है । सागर तो गतिमय स्रोत की गतिहीन स्थिति भर है । केवल सागर तक पहुँचना ही तुम्हारा लक्ष्य नहीं, वह तो अनंत राशि में मिलकर अनंत होना है, अपने को खो देना है जबकि जिस गुण को तुम धारण करती हो, वह तुम्हारे बूँद-बूँद में है और इसी बूँद से तुम्हारी पहचान है । श्वेत दुग्ध की धार टपकाती गाय की तरह तुम्हारे बछड़े हम ही हैं जिसकी व्यथा को तुम अपनी व्यथा से जोड़ नहीं पा रही हो । तुम्हारी हमें जरूरत है । वस्तुत: रहस्य-भावना की यह अन्तर्मुखता इस कविता के अलावा दूसरी कविताओं में भी प्रचुर मात्रा में मिलती है । जिस "सहज स्फुरण - प्रधान काव्य" की संज्ञा इन कविताओं को दी जाती है, वह सहज स्फुरण भी अन्तश्चेतनावाद का पूरी तरह से शिकार हो गया है । पल्लव में पन्त जी बाहर की विचित्रता में अपने को खो देते हैं, यहाँ भीतर के आह्लादमयी सहज स्फुरित काव्य-ज्ञान के नये आलोक में । यहाँ प्रेम की कविताओं को भी देखा जा सकता है किन्तु उसका रूप रंग आध्यात्मिक ताने-बाने से ही बुना हुआ है । प्रकृति की कविताएँ भी हैं, किन्तु उन पर कवि का अन्तश्चेतनावाद छाया हुआ है और यह अन्तश्चेतनावाद इस हद तक छाया हुआ है कि इन कविताओं को न तो ठीक-ठीक प्रकृति की कविताएँ कहा जा सकता है और न अन्तश्चेतना की ।

ये कविताएँ जिस तरह की भाषा-शैली में लिखी गयी हैं, उनमें सूर्य की किरणों जैसी एक चकाचौंध पैदा करने की शक्ति और पारदर्शिता का

गुण है । सम्भवत: इसीलिए कवि इन कविताओं को "रश्मिमदी काव्य" नामक संज्ञा से सम्बोधित करता है । डा॰ हरिवंशराय बच्चन ने इन कविताओं को गद्य-काव्य या गद्य-गीत कहा है, इसीलिए आगे पंक्तियों में मैं सर्वप्रथम गद्य-काव्य पर विचार करते हुए और "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं को उसके परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हुए इस चर्चा को विस्तार दूँगा ।

गद्य-काव्य से सामान्यत: यह अर्थ लिया जाता है कि भावों की गद्य में इस प्रकार अभिव्यक्ति की जाय कि वह कविता हो जाए । भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में देखें, तो संस्कृत साहित्य में कथा-आख्यायिका के लिए यह प्रयुक्त किया जाता था । अँग्रेजी-साहित्य के "पोयटिक प्रोज" को भी इससे जोड़ा जा सकता है, दण्डी ने तीन प्रकार के काव्यों का वर्णन किया - गद्य-काव्य, पद्य-काव्य, और मिश्रित काव्य । इसके जिस रूप की आज मान्यता है वह हिन्दी में प्रचुर मात्रा में लिखा गया है । यदि हम चाहें तो सुविधा की दृष्टि से गद्य के सन्दर्भ में इसे गद्य-काव्य और कविता के सन्दर्भ में गद्य-गीत कह सकते हैं । ऐसे गद्य-गीत या कविताओं की विशेषता यह होती है कि ये हृदय की तीव्र अनुभूति को कल्पना के संयोग से रसात्मकता, संगीतात्मकता और चित्रात्मकता लिए हुए व्यक्त करती हैं । यहाँ हमें फालतू के शब्द शायद ही मिलें । इसलिए यदि हम कहें कि अनुभूति की तीव्रता ही अभिव्यक्त होकर गद्य-गीत बनती है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । चूँकि पन्त जी की इस कविता को गद्य-गीत भी कहा गया है, अत: सर्वप्रथम गद्य के सन्दर्भ में मैं कुछ लोगों के मतों को उद्धृत करूँगा जिसके परिप्रेक्ष्य में इस कृति के सन्दर्भ में भी एक मोटी राय बनायी जा सके ।

डा॰ रामकुमार वर्मा ने "शबनम" की भूमिका में गद्य-गीत का प्रयोग करते हुए कहा है कि - गद्य-गीत साहित्य की भावनात्मक अभिव्यक्ति है । इसमें कल्पना और अनुभूति काव्य-उपकरणों से स्वतंत्र होकर मानव-जीवन के

रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त और कोमल वाक्यों की धारा में प्रवाहित होती है। महादेवी वर्मा ने श्री केदार द्वारा रचित "अधखिले फूल" की भूमिका में कहा कि - "पद्य का भाव उसके संगीत की ओट में छिप जाय पर गद्य के पास उसे छिपाने के साधन कम है। रजनीगन्धा की क्षुद्र छिपी हुई कलियों के समान एकाएक खिलकर जब हमारे नित्य परिचय के कारण शब्द हृदय को भाव-सौरभ से सराबोर कर देते है, तब हम चौंक उठते है। इसी में गद्य-काव्य का सौन्दर्य निहित है। इसके अतिरिक्त गद्य की भाषा बन्धन-हीनता में बद्ध चित्रमय, परिचित और स्वाभाविक होने पर भी हृदय को छूने में असमर्थ हो सकती है। कारण हम कवित्वमय गद्य को अपने उस प्रिय मित्र के समान पढ़ना चाहते है, जिसकी भाषा बोलने के ढंग विशेष और विचारों से हम पहले से ही परिचित होंगे। उसका अध्ययन हमें इष्ट नहीं होता।"

डा॰ जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने भी गद्य-काव्य पर विचार किया है। "नागरी प्रचारिणी हीरक जयन्ती ग्रन्थ" में संकलित निबन्ध में गद्य-काव्य की विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा कि "जो गद्य कविता की तरह रमणीय, सरस, अनुभूतिमूलक और ध्वनि-प्रधान हो, साथ ही साथ उसकी अभिव्यंजना प्रणाली अलंकृत और चमत्कारी हो उसे गद्य-काव्य कहना चाहिए। इसमें भी इष्टकथन के लिए कविता की भाँति न्यूनातिन्यून अथवा केवल आवश्यक पदावली का प्रयोग किया जाना चाहिए। अग्निपुराण के "संक्षेपात् वाक्यमिष्टार्थ-व्यवच्छिन्ना पदावली" के अनुसार संक्षिप्त काव्य-विधान का विचार इसमें भी रहना चाहिए। कविता के समस्त गुण धर्मों के अनुरूप संगठित होने के कारण गद्य-काव्य में भी प्रतीक भावना अथवा आध्यात्मिक संकेत के लिए आग्रह दिखायी पड़ता है। इसमें भी भावापन्नता का वही रूप मिलता है जिसका आधुनिक प्रगीतात्मक रचनाओं में आधिक्य रहता है। यदि मूल प्रकृति का विचार किया जाय, तो उसकी संगति शुद्ध प्रगीतात्मक कविता के साथ अच्छी

तरह बैठती है क्योंकि इसके साध्य और साधन उसी कोटि के होते हैं। कविता की भाँति इसमें भी कारण रूप से प्रतिभा ही काम करती है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "हिन्दी साहित्य" में इस विधा के सन्दर्भ में कहा है कि - "इस प्रकार के गद्य में भावावेग के कारण एक प्रकार की लययुक्त झंकार होती है जो सहृदय पाठक के चित्त को भावग्रहण के लिए अनुकूल बनाती है।" डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत का कहना है कि - मैं हिन्दी गद्य-काव्य को किसी व्यक्त या रहस्यमय आधार से अभिव्यक्त होने वाली कवि के भावजगत् की कल्पना-कलित निर्बाध गद्यात्मक अभिव्यक्ति मानता हूँ।" डा॰ पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" ने "चन्द्रावली" नाटिका के समर्पण को गद्य-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण मानते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को गद्य-काव्य का प्रथम लेखक माना है। इसी तरह आधुनिक युग के अनेक रचनाकारों की रचनाओं को गद्य-काव्य के उदाहरण स्वरूप हम प्रस्तुत कर सकते हैं। चूंकि यहाँ मैं पद्य के सन्दर्भ में गद्य-गीत पर विवेचन के लिए प्रतिश्रुत हूँ, इसलिए पन्त जी की इन कविताओं के परिप्रेक्ष्य में ही उपर्युक्त सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए विचार करूँगा।

प्रसंगात् जैसा कि मैं पहले ही हरिवंशराय बच्चन को उद्धृत करते हुए बता चुका हूँ कि उन्होंने "कला और बूढ़ा चाँद" की विधा को गद्य-काव्य की उस परम्परा से जोड़ा है जिसका बीजारोपण छायावाद की कविता के साथ ही साथ रायकृष्णदास की साधना {1916} से हुआ जो वियोगी हरि {तरंगिणी}, चतुरसेनशास्त्री {अंतस्तल}, तेजनारायण "काक" {मदिरा}, रामकुमार वर्मा {हिमहास} की कृतियों में पल्लवित तथा दिनेशनंदिनी चोरड़्या {शबनम}, डा॰ रघुबीर सिंह {शेष स्मृतियाँ}, और माखनलाल चतुर्वेदी {साहित्य देवता} की कृतियों में पुष्पित-फलित हुई, न कि मुक्त छन्द की उस परम्परा से जो महाकवि निराला से आरम्भ होकर अज्ञेय, गिरिजाकुमार

माथुर, भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुबीर सहाय, कुंवरनारायण आदि कवियों में विकसित हुई ।" इसी सन्दर्भ में बच्चन जी ने इन कविताओं की शैली के सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण बात कही है । उनका कहना है कि - "कविताओं को साधारण गद्य की तरह छाप दिया जाता, तो इस प्रकार के भ्रम की सम्भावना न रह जाती, पुस्तक कम पृष्ठों में छप जाती, सस्ती होती, और साधारण जनता तक पहुंच जाती । मैंने किन्हीं दो पृष्ठों पर गिना है - कुल शब्द 55 है ।"[3]

इस प्रकार गद्य-काव्य की परम्परा से जोड़ते हुए बच्चन जी इस काव्य-संग्रह की कविताओं की शैली को एक नये धरातल पर देखने की बात करते है किन्तु "कथ्य" अथवा "विषयवस्तु" की वजह से वह पूरी तरह से इसे नहीं जोड़ पाते क्योंकि इन कविताओं की "एक नवीन प्रतीकात्मकता, सूक्ष्मता अथवा प्रोज्जवलता" उन्हें ऐसा करने से रोकती है । इस सन्दर्भ में अजितकुमार के विचारों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा । उनका कहना है कि - "यहाँ इस प्रश्न को उठाना भी युक्तिसंगत होगा कि प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं को किस हद तक काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है ? मुझे कोई आश्चर्य न होगा यदि इस विषय पर विभिन्न लोगों के विभिन्न मत हों । परम्परागत काव्य-शैली के परम्परागत समर्थक तो निश्चय ही इन्हें कविता मानने से इनकार करेंगे, नवीनता के ध्वजाधारी शूरों को भी इन्हें कविता की भाँति अंगीकार करने में संकोच होगा । बीच का एक वर्ग ऐसा भी हो सकता है जो इन्हें गद्य तथा काव्य के बीच रखकर गद्य-काव्य की संज्ञा दे । लेकिन इस बात को लेकर कोई विवाद खड़ा करना मुझे तो बिलकुल व्यर्थ प्रतीत होता है । "कला और बूढ़ा चाँद" का "रश्मिमदी काव्य" ··· कविता के नित नये होते

3· नये पुराने झरोखे - हरिवंशराय बच्चन, पृ·-220.

जाते रूपों में से एक है । वह कविता ही है, और कुछ कदापि नहीं । कारण यह है कि कवि ने स्वयं ही जिसे काव्य कहकर सौंपा हो उसे "काव्येतर" घोषित करना किसी भी व्यक्ति की न केवल अनधिकार चेष्टा होगी, वरन् भयंकर भूल भी । किसी रचना की सबसे कच्ची और दुर्बल आलोचना यह होती है कि उसके मौलिक स्वरूप का दावा ही अस्वीकार कर दिया जाय । पर जो रचना जिस रूप में प्रस्तुत की गयी हो, उसे कोई आलोचक कितने ही जोर से अन्यथा क्यों न कहे, वह रहेगी अपने मूल और वास्तविक रूप में ही । हाँ, आलोचक को इतना अधिकार अवश्य है और सदा है कि वह मूल्यांकन के अपने मानदण्ड स्थिर करे और उनकी तुला पर किसी रचना को उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट सिद्ध करने के यत्न में लगे । अस्तु विचारणीय यह हो सकता है कि उच्छ्वास, ग्राम्या, पल्लव, अतिमा अथवा प्रस्तुत संग्रह में पंत जी की कविता उत्कर्ष के किन-किन स्तरों तक पहुँची है; किन्तु यह विवाद का विषय कदापि नहीं बन सकता कि अमुक अथवा अमुक रचना कविता है अथवा नहीं ।"[4] बात को आगे बढ़ाते हुए वे पुन: कहते हैं कि - संभवत: इस प्रश्न का पूर्वाभास होने के कारण ही पन्त जी ने "कोपलें" शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ पुस्तक के प्रारम्भ में दे देना आवश्यक समझा है —

"ओ सृजन उन्मेष,
मन ने बहुत काट-छाँट की ···
कला-शिल्प के हाथों से,
भाव-बोध के स्पर्शों से
सहस्रों नये बसन्त संवारे ।
अभी असंख्य शरदों को
अपने अंग
पावक में नहलाकर
रूप ग्रहण करना है ।

4· कविता का जीवित संसार - अजित कुमार, पृ·-86-87.

आशय यह है कि सृजन की प्रेरणा ने आज तक अभिव्यक्ति के जो भी रूप ग्रहण किये है, उससे कहीं अधिक तथा कहीं विविध छटाओं में उसे अपने आपको व्यक्त करना शेष है । अत: इन गद्यवत् कविताओं को देखकर कोई न हतबुद्धि हो और न यही समझे कि ये है; काव्य का वह अन्तिम चरण, जिस तक अथवा जिसके आगे कविता के जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।"[5] गद्यवत् शैली के सन्दर्भ में श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है कि - "इसमें उन्होंने नयी कविता की बहुनिन्दित गद्य-शैली को अपना लिया है । चित्रमय भाषा में पद्यबद्ध विचारों को प्रस्तुत करना, जो युगवाणी से वाणी तक उनकी विशिष्टता रही है उसे भी सहसा त्याग दिया है और कहा है कि - "मैं शब्दों की इकाइयों को रौंदकर संकेतों में प्रतीकों में बोलूंगा" वस्तुत: "कला और बूढ़ा चाँद" की भाषा विश्लेषण की भाषा नहीं बल्कि प्रतीकों और बिम्बों की भाषा है ।"[6] जहाँ तक इन कविताओं के गद्यवत होने के आरोप का सम्बन्ध है तो क्यों न कुछ कविताओं को लेकर इसपर विचार कर लिया जाय ।

इस संग्रह की पहली कविता 'बूढ़ा चाँद' इस प्रकार है — "बूढ़ा चाँद" कला की गोरी बाहों में क्षण भर सोया है । यह अमृत कला है शोभा असि, वह बूढ़ा प्रहरी प्रेम की ढाल । हाथी दाँत की स्वप्नों की मीनार सुलभ नहीं, न सही । ओ बाहरी खोखली समझे, नाग दन्तों विष दन्तों की खेती मत उगा । राख की ढेरी से ढँका अंगार सा बूढ़ा चाँद कला के विछोह में म्लान था, नये अधरों का अमृत पीकर अमर हो गया । पतझर की ठंठी टहनी कुहासों के नीड़ में कला की बाहों में झूलता पुराना चाँद ही नूतन आशा सम्पन्न प्रकाश है । वही कला, राका शशि, - वही बूढ़ा चाँद, छाया शाश्वती है ।" दूसरी कविता है - "कला" जो इस प्रकार है - ओ पारगामी गर्जन मौन शुभ्र ज्ञान

---

5. कविता का जीवित संसार - अजित कुमार, पृ.-86-87.
6. ओंकारनाथ श्रीवास्तव, "धर्मयुग", 19 मई 1963, पृ.-41, उद्धृत - पन्त-जीवन और साहित्य - शान्ति जोशी, पृ.-343.

घन, आम नील की चिन्ता में मत घुल । यह रूप कला ही प्रेम कला अमरों का गवाक्ष है । - उस पार की ज्योति से तेरा अन्तर दीपित कर देगी । तेरी आत्मरिक्तता अक्षय वैभव से भर जाएगी । ओ शरद अभ्र, तूने अपने मुक्त पंखों से आँसू का मुक्ता भार आकांक्षा का गहरा श्याम रंग धरती पर बरसा-कर उसे हरी-भरी कर दिया । तेरा व्यथा घुला नम्र मन व्यापक प्रकाश वहन करेगा, शाश्वत सुख का दर्पण बनेगा । तेरे द्रवित हृदय में स्वर्ग स्वप्नों का इन्द्रधनु नीड़ बनाएगा । शिव की कला ही सत्य और सुन्दर है ।

उपर्युक्त "बूढ़ा चाँद" और "कला" ये दो कविताएँ इस संग्रह की ऐसी प्रतिनिधि कविताएं हैं जिनके आधार पर कवि ने इस काव्य-संग्रह का नाम "कला और बूढ़ा चाँद" रखा है । "बूढ़ा चाँद" पहले आता है और कला बाद में । बूढ़े चाँद के प्रति कवि अतिरिक्त रूप से आशावान है क्योंकि कला की सारी सम्भावनाएं "बूढ़े चाँद" में ही उसे दिखायी देती है । दूसरे शब्दों में कहें तो कला के सन्दर्भ में परम्परा के प्रति उसका अतिरिक्त मोह ही यहाँ एक प्रकार से दिखायी देता है । कला को वह सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् से जोड़ता है । "कला" कविता में कला के लिए बहुत से विशेषणों का प्रयोग किया गया है । ये विशेषण इतने बड़े चढ़े हैं कि स्वयं कला के बारे में कवि की कोई साफ-सुथरी दृष्टि नहीं प्रस्तुत कर पाते । ऐसा लगता है जैसे कवि की कला की सोच कुछ आकर्षक रूढ़िबद्ध शब्दों की सोच है या जैसे कला के सन्दर्भ में कवि के ऐन्द्रिय संवेग उसकी भाषिक चेतना से एकाकार न हो पा रहे हों, बल्कि भाषिक इकाई में ही घुलमिल जा रहे हों । इन कविताओं के एक-एक शब्द कवि की संवेदना में घुले-मिले से लग रहे हैं । साथ ही ये अपनी अलग इयत्ता को प्रस्तुत करते हैं । इन कविताओं में कवि की उन्मुक्तता वस्तुत: शब्दों की अर्थानुगत उन्मुक्तता है और शब्दों की यह अर्थानुगत उन्मुक्तता गद्यवत है जिससे गद्य-गीत या गद्य-काव्य का इनपर आरोप लगाया जाना बहुत अनुचित

नहीं लगता । यह बात दूसरी है कि जब कवि इन्हें कविता मान रहा है तो हम कौन होते हैं यह कहने वाले कि यह गद्य-गीत है या गद्य-काव्य । फिर भी यहाँ यह कहना नहीं भूलना चाहिए कि कविता जीवित है और अपनी पूरी अर्थच्छायाओं के साथ ।

इस संग्रह की कविताओं में प्रयुक्त एक-एक शब्द कविता के विवेचन और विश्लेषण में और साथ ही उसके स्वरूप निर्धारण में अपना एक अलग महत्व रखते हैं । यहाँ मुख्यत: कविता की आन्तरिक प्रकृति का आधार उसकी "काव्यवस्तु" है । जहाँ तक विषयवस्तु का सवाल है, तो यह पूरी तरह से गौण रूप में है । जैसा कि कहा जाता है कि काव्यवस्तु कृति की अपनी संरचना के बाहर सिद्ध नहीं हो सकती, तो यह बात इन कविताओं के बारे में पूरी तरह से लागू होती है । वस्तुत: इन कविताओं में आबद्ध काव्य-वस्तु रचना-सापेक्ष होने के कारण बहुत ही विशिष्ट है जिसकी न तो हम पूरी तरह से व्याख्या कर सकते हैं और न ही उसके सम्पूर्ण अर्थ को पुन: सृजित कर सकते हैं । वस्तुत: इसी अर्थ में ये कविताएं कविताएं हैं न कि एक विशिष्ट प्रकार का गद्य । अजित कुमार का भी कहना है कि - "ये कविताएं भावबोध की दृष्टि से सहजतर और अर्थबोध की दृष्टि से कठिनतर हैं; उनकी अभिव्यक्ति समृद्ध सम्पन्न होने के साथ-साथ अटपटी हो गयी है; और वे स्वत: स्फुरित होने के साथ ही प्रकट एवं परोक्ष रूप से वेदों-उपनिषदों के तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अनेकानेक प्रसंगों को अपने में समेटे चलती हैं । पर ये प्रकटत: परस्पर विरोधी तत्व हमारे जैसे सामान्य पाठकों को उलझा देते हैं, क्योंकि हमने-रूढ़ अर्थों में - सिद्धि प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्गों - भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि - की बात तो अक्सर सुनी है, पर हमें सहसा यह विश्वास नहीं होता कि कोई साधना या सिद्धि इन सबसे समन्वित भी हो सकती है ।" [7]

7· कविता का जीवित संसार - अजित कुमार, पृ·-88.

आगे उन्होंने लिखा है कि - "इस समन्वय का परिणाम यह हुआ है कि इन कविताओं के भावों में तारतम्य बिठाना और विचारों के विकास की दिशा निर्धारित कर पाना पंत-काव्य के नियमित पाठकों के लिए भी अपेक्षाकृत दुष्कर हो गया है। और जहाँ तक पंत जी की कविता से अपरिचित किसी नये पाठक का सम्बन्ध है तो उसे निश्चय ही इन कविताओं के प्रतीक तथा अर्थ पहेली बुझौवल के समान प्रतीत होंगे।"[8]

पन्त जी अपनी सम्पूर्ण काव्यकृतियों में एक बात की तरफ बराबर सजग रहे कि मनुष्य की वाह्य और आन्तरिक ज़िन्दगी में सामंजस्य बना रहे। इसके लिए वह मानव-जीवन को ऊर्ध्व की ओर विकसित करने पर बल देते हैं। यहाँ वस्तुत: वह श्रीअरबिन्द से प्रभावित हैं। उनके लिए काव्य-रचना की कसौटी इस प्रकार है - "जिस सौन्दर्य की आधारभूमि सत्य हो, अर्थात् जो सौन्दर्य जीवन की वास्तविकता में प्रतिष्ठित हो और जिसका गुण शिव अथवा लोकमंगल हो, निश्चयमेव वही सौन्दर्य या कलामूल्य सफल लेखन की कसौटी है।"[9] "कला" शीर्षक कविता में पन्त जी कहते हैं कि —

"शिव की कला ही
सत्य और सुन्दर है।"

कुछ आलोचकों ने जब उनकी कविताओं पर यह आरोप लगाया कि वह शिवम् और सुन्दरम् का सामंजस्य तो कर लेते हैं किन्तु सत्यम् से परहेज करते हैं, तो इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा कि - "यह कहा जाता है कि मेरी कविताओं में सुन्दरम् और शिवम् से भी बड़े लक्ष्य सत्यम् का बोध नहीं होता ... मुझे लगता है कि सत्य शिव में स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूल में रंग हैं,

---

8. कविता का जीवित संसार, अजित कुमार, पृ.-88-89.
9. कला और संस्कृति, सुमित्रानन्दन पंत, पृ.-125.

फल में जीवनोपयोगी रस; और फूल की परिणति फल में सत्य के नियमों ही द्वारा होती है, उसी प्रकार सुन्दरम् की परिणति शिवम् में सत्य ही के द्वारा हो सकती है ।"[10] उत्तरा की भूमिका में भी उन्होंने लिखा है कि – "आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोणों में केवल धरातल का भेद है, और ये धरातल अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । सत्य, शिव, सुन्दर कला का धरातल है, क्षुधा-काम प्राकृतिक आवश्यकताओं का । जिस सत्य को हम स्थूल धरातल पर क्षुधा-काम कहते हैं, उसी को सूक्ष्म धरातल पर सत्य, शिव, सुन्दर । एक हमारी सत्ता की बाहरी भूख प्यास है, दूसरी भीतरी ।"[11]

काव्य के सत्य के सन्दर्भ में पन्त जी का कहना है कि - "काव्य का सत्य मानव-चेतना का वह प्रकाश है जो अपने ही सतरंग सौन्दर्य में साकार होकर रूप, गंध, स्पर्श, रस शब्द की तन्मात्राओं में झंकृत हो उठता है ।"[12] "कला और बूढ़ा चाँद" की "रहस्य" कविता में स्थिति बिलकुल दूसरी है । यहाँ कवि कथ्य, अलंकार, रूपकों की खोज को इसलिए व्यर्थ मानता है क्योंकि ये कवि की अन्तर्मन की अभिव्यक्ति नहीं है । अन्तर्मन की अभिव्यक्ति का प्रसार असीमित है और इस असीमित की अभिव्यक्ति के लिए "नेति" "नेति" के अलावा कोई दूसरी चीज नहीं है । फिर कथ्य, अलंकार और रूपकों की क्या बिसात ? यहाँ तो शब्दहीन संगीत और सराबोर कर देने वाले रस की प्रतीति हो रही है –

कहाँ पाऊँ रूपक,
अलंकरण, कथा ?
ओ कविते,
ये मन के पार के
पवित्र भुवन हैं, –

---

10. शिल्प और दर्शन, पंत, पृ.-39-40, आधुनिक कवि, भाग-2की भूमिका.
11. उत्तरा - सुमित्रानन्दन पन्त, भूमिका, पृ.-19-20.
12. शिल्प और दर्शन, सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-373.

यहाँ रूप रस गन्ध
अवाक् ऊँचाइयों
असीम प्रसारों
अतल गहराइयों में
केवल

अगाध शांति है ।
अरूप लावण्य
अकूल आनन्द
प्रेम का

अभेद्य रहस्य ।

"देहमान" कविता में कवि "लाड्लो" को उत्तर दिशा जाने से रोकता है क्योंकि वहाँ गन्धर्व और किन्नर विलास करते हैं । इस कविता में एक प्राचीन मिथ का रूपक खड़ा करते हुए कवि उत्तर दिशा के बारे में कहता है कि वहाँ तो —

चाँदनी की मोहित खोहों में
ओसों के दर्पण-से सरोवर हैं,
द्वार पर
झीने कुहासों के परदे पड़े हैं ।

* * *

वहाँ अप्सर रहते हैं ।

वे मन के तारों में
ऐसे बोल छेड़ते हैं —

देह लाज छूट जाती है ।
प्राणों की गुहाएँ
आनन्द निर्झरों से
गूंज उठती हैं ।

कविता का अन्त इस प्रकार होता है —
वहाँ आलोक की भूलभुलैया में
अंधकार
खो जाता है ।

उत्तर दिशा को
ज्ञान-शिखर की
अनन्त चकाचौंध में
देहमान लेकर
अकेले न जाना
भामिनी
वहाँ कोई नहीं,
कोई नहीं है ।

कविता के पढ़ने से साफ-साफ जाहिर होता है कि सपनों का देश, आकांक्षाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं का देश उत्तर दिशा में है जहाँ की केवल कल्पना ही आनन्द विभोर कर देती है । लेकिन इस कविता का कितना विचित्र विरोधाभास तब दिखायी देता है जब अन्त में कवि कहता है कि "वहाँ कोई नहीं" "कोई नहीं है ।" क्या वास्तवी ज्ञानशिखर की चकाचौंध की अन्तिम परिणति यही होती है कि सब कुछ शून्य में विलीन हो जाय ? जहाँ देहमान ही भूल जाय । जहाँ वस्तुओं, व्यक्तियों को देखने का नज़रिया ही बदल जाए । तात्पर्य यह कि वास्तवी कल्पना का कोई मतलब नहीं होता है । काल्पनिकता का औचित्य बस उतना ही है जितना वह हमारे लिए उपयोगी हो ।

"मधुछत्र" कविता में कवि ममाखियों के छत्ते-सी मानवता की रचना की कल्पना करता है । वह मधुछत्र को देखकर कहता है कि —

मानवता की रचना
तुम्हारे छत्ते-सी हो ।
जिसमें स्वर्ग फूलों का मधु
युवकों के स्वप्न,
मानव हृदय की
करुणा ममता —,

मिट्टी की सौंधी गंध भरा
प्रेम का अमृत,
प्राणों का रस हो ।

और इस प्रकार "मानवता की रचना" की कल्पना कर लेने के बाद "खोज" कविता में गोधूली की बेला में चरागाहों से आ रही घंटियों की टिन-टिन ध्वनि की तरफ उसका ध्यान जाता है और तभी उसे अतिचेतन की भी याद आ जाती है जिसमें जीवित परम्पराएं भेड़ों के झुण्ड-सी अवस्थित है तथा संस्कारवश मनुष्य जिन्हें ढो रहा है —

साँझ के धुंधलके में
धीमी धीमी
टिनटिनाती घंटियों की ध्वनि
किन अनजान चरागाहों से
आ रही है ।

भेड़ों के झुण्ड-सी
अवचेतन की
घाटियों में छिपी
परम्पराओं को
संस्कार
अपने अभ्यास की
पैतृक लाठी से
हाँक रहे हैं ।

"अमृत क्षण" कविता में कवि मिट्टी की जय बोलता है —

यह मिट्टी ही
शाश्वत है
असीम है
चैतन्य है ।

"शरदशील" कविता में शरद के आने और उसके छा जाने का चित्रण है । स्वच्छ और नीला आकाश मानो उसके आवास-गृह है । यहाँ प्रारम्भ में

विरोधाभास और बाद में रूपान्तरण है । शरद की कल्पना चन्द्रमुखी प्रिया की कल्पना में बदल जाती है । इस कविता में आगे जाकर भावोन्मुक्तता इस प्रकार सार्वभौमिक होकर हमारे समक्ष आती है —

ओ युवक युवतियों,
स्वच्छ चाँदनी में नहाओ,
नग्न गात्र, नग्न मन, —
आत्मदीप लिए
मुक्त चाँदनी में आओ !

नवीन देह बोध पाओ, —
रूप रेखाएँ देखो,
रूप सीमाएँ
पहचानो ।

"रिक्त मौन" कविता में वैदिक ऋषि ऊषा की तरह हैं और नये कवि संध्या की तरह । "सहत गति" में अंधकार और प्रकाश को एकमेक कर दिया गया है । ज्ञान को सबसे बड़ी पथ की बाधा बताया गया है क्योंकि कवि के अनुसार ज्ञान ही सबसे बड़ा अज्ञान है । इसीलिए विश्वम्भर मानव ने लिखा है कि — "अपने नवीन जीवन-दर्शन के अनुकूल पंत जी ने इस कृति में अंधकार और प्रकाश को एक ही कर दिया है । पन्त जी ज्ञान-अज्ञान, तम-प्रकाश, जड़-चेतन में कोई अन्तर नहीं मानते । इस तथ्य की घोषणा उन्होंने अपनी अन्य कृतियों जैसे "वाणी" और "सौवर्ण" में भी की है । भारतीय सन्तों, दार्शनिकों और मनीषियों से यह उनका पहला मतभेद है । कबीर और तुलसी अज्ञान को अज्ञान ही मानते है । अद्वैतवादी यद्यपि कहते यही हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है; तथापि व्यवहारकाल में वे भी भेद को मानकर चलते है । मैं नहीं समझता पन्त जी की इस बात को कभी मान्यता प्राप्त हो सकेगी ।"[13] लेकिन शान्ति जोशी ने इसका प्रतिकार करते हुए लिखा है

---

13. सुमित्रानन्दन पन्त - विश्वम्भर मानव, पृ.-288.

कि - "शंकर का मूल सिद्धान्त - अद्वैतवाद-जड़-चेतन में मूलगत अन्तर नहीं मानता । वह एक ही है, यह हमारा अज्ञान है जो उनकी द्वैतजन्य व्याख्या करता है । आधुनिक नव्य वेदान्ती उदाहरणार्थ स्वामी विवेकानन्द, श्री अरबिन्द और राधाकृष्णन ने जड़-चेतन, प्रकाश-अंधकार में एक ही सत्य के संचरण को देखा है । अत: ज्ञानी जगत् को मिथ्या नहीं कहता, उसे जगत् सुन्दर और सत्यमय लगता है क्योंकि उसकी अनेकता का आधार एकता है । उपनिषद में ब्रह्म को क्रमश: अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द माना गया है ।"[14]

"मुख" कविता में कवि लिखता है -

मेरा ही मन बनता है
वह मुख, —
जब मैं तुम्हें स्मरण करता हूँ !

मेरा ही मन बनता है
वह सुख, —
जब मैं तुम्हें
वरण करता हूँ ।

यहाँ कवि का आत्मपरक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । दूसरे के मुख का स्मृतिचित्र अपने मन से उद्भूत होता है इसलिए अपना मन ही वह मुख है और जिस सुख की प्राप्ति हर व्यक्ति को होती है, वह भी अपने अन्तर का स्थित सुख है जो कारण के उपस्थित होने पर अपने आप प्रकट हो जाता है ।

"अनुभूति" शीर्षक कविता में कवि कहता है कि —

ओ काल शिखर पर
रजत नील में स्थित
स्वच्छ मानस,
ओ अन्तश्चेतन,

---

14. पंत - जीवन और साहित्य, शांति जोशी, पृ.-351-352.

तुम नव उदय
नव हृदय हो ।
मेरा इन्द्रिय बोध
तुममे डूब
स्वर्ण शुभ
निखर उठा ।

"प्रेम" कविता में कवि गुलाब की अव्यक्त शोभा को देखता ही रह जाता है । वह उसके सौन्दर्य की गहराइयों के रहस्य को खोलने की बार-बार विनती करता है लेकिन तब वह आश्चर्य चकित रह जाता है जब देखता है कि उसमें जीवन और स्पन्दन है । उसके प्रेम में उसे उन्मुक्तता दिखायी देती है ।

"यज्ञ" कविता में मंगल की रचना के लिए कवि सबकुछ लुटा देने की बात करता है । लेकिन यह "यज्ञ" वैदिक यज्ञ नहीं है अपितु "मानस यज्ञ" और "भाव यज्ञ" है । "अन्तर्मानस" में कवि ज़िन्दगी के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण का विरोध करता है । वह जीवन सत्य को उसकी सम्पूर्णता में देखता है । यहाँ उसने "क्षणिकवाद" और "संशयवाद" का विरोध किया है । वह कहता है कि —

देह अन्धकार न थी,
अन्त: सुख का पात्र बन गयी;
इन्द्रियाँ क्षणिक न थीं
नया बोध-द्वार बन गयीं;
जीवन मृत्यु न था
नयी शोभा नयी क्षमता बन गया ।
* * * *
* * * *
हृदय का अनन्त यौवन,
प्राणों की स्वच्छ आग निकला -
यह रत्न ज्वाल सरोवर ।

"गीत खग" में पक्षी कहता है कि —

ऊँचाइयों को
समतल में बिछा
गहराइयों को
समजल में डुबा,
इन्द्रधनुषी तिनकों का
नीड़ बसा
कलरव बरसाऊँगा —
नील हरी छाहों में छिप
स्वप्नों के पंख खोल
धरती को सेऊँगा ।

इस काव्य-संग्रह की अगली कविता है "अयुगल" शांति जोशी ने लिखा है कि "भारतीय दर्शन और धर्म में प्रकृति-पुरुष, शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, राम-कृष्ण "अयुगल" है, एक दूसरे से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है । पन्त को वह अमूर्त अद्वैतवाद स्वीकार्य नहीं है जो धरती की चेतना और शक्ति का आलिंगन नहीं करता है । जोक द्वैत-अद्वैत का क्रीड़ा स्थल है, उन्हीं का "परस्पर का प्यार" है और यह प्यार ही आनन्द-मंगल का निस्सरण है ।"[15]

"पटपरिवर्तन" कविता के सन्दर्भ में शांति जोशी का कहना है कि रिक्शा से जब कवि प्रयाग के कटरे के बाजार में सामान खरीदने निकला तो उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई जिसकी अभिव्यक्ति इस कविता में हुई है ।[16] इस अन्तर्दृष्टि को कवि इस प्रकार व्यक्त कर रहा है —

ओ विराट् चैतन्य
यह मैं क्या देखता हूँ

15· पंत-जीवन और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ·-353.
16· वही, पृ·-353.

कि घर आग पेड़
और मनुष्य
किसी अदृश्य पट में
चित्रित भर हैं ।
ये वास्तविक सत्य नहीं
मोम के पुतले भर हैं ।

रथवान
अश्व को चाबुक मारता है
वह तुम्हारी ही
पीठ पर पड़ रहा है ।
और तुम
खिलखिलाकर
भीतर
हँस रहे हो ।

ओ अद्वितीय,
अतुलनीय,
मैं आश्चर्य में डूबा
अवाक्
तुम्हीं में डूबा हूँ ।

"पारदर्शी" में कवि का दृष्टिकोण मानव के चैतन्य में छिपे हुए प्रकाश को दिखाना है । "अमृत" में कवि सूर्य से ज़िन्दगी चाहता है और चन्द्रमा से प्यार । सामाजिक विकास के लिए पुरुष प्रकाश का काम करे और स्त्री अपने प्यार से उसमें जीवन-स्पन्दन ला दे । "प्रबोध" कविता में कवि गौर मांस सरोवर में कूदने की बात करता है तथा कहता है कि इसमें स्वर्ण हंस है और साथ ही श्वेत और लाल कमल भी । यहाँ यह कहा जा सकता है कि पन्त जी की दमित वासनाजन्य इच्छाएँ "गौर मांस सरोवर" "आलिंगन" इत्यादि जैसे शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त हुई है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि कवि एक प्रकार से शरीर को नकार नहीं पाता है और इन शब्दों के द्वारा वह हमारे बीच बना रहता है । उसकी स्वप्नों की गहराइयाँ अपनी ओर खींच रही है तथा

अथाह गहराइयों का सुख उसके मन को निष्क्रिय कर दे रहा है ।

इसी तरह "पादपीठ" कविता में कवि कहता है कि —

ओ चन्द्रकले,
केवल अमृतत्व ही अमृतत्व
अनिर्वचनीय

अस्तित्व ही अस्तित्व
शेष है ।
मेरी पादपीठ
अंधकार है,
जहाँ तुझे
खड़ा रहना है ।

इस प्रकार इस काव्य-संग्रह की कुछेक कविताओं की चर्चा कर लेने के बाद अब मैं पूरे काव्य-संग्रह पर संक्षेप में विचार करूंगा । पहली बात तो यह है कि ये कविताएं मुक्त छन्द में लिखी गयी हैं और इस मुक्त छन्द के द्वारा एक धीमी लय पैदा करने की कोशिश की गयी है । यह लय और कुछ पंक्तियों की आवृत्तियाँ इस प्रकार बार-बार आती हैं कि गीत जैसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं । कुल मिलाकर ये गीतात्मक कविताएं हैं और मुक्त छन्द में गीतात्मक प्रभाव पैदा करने की कोशिश करती हैं । यह काव्य-संग्रह इसलिए भी स्मरणीय है कि इसमें विशिष्ट ढंग की बिम्बात्मकता है । वैसे तो पन्त जी बिम्बों की रचना में बहुत ही समर्थ कवि रहे हैं किन्तु यहाँ बिम्ब-रचना का ढंग कुछ बदला हुआ है । प्रारम्भिक पन्त को एक बिम्ब खड़ा करने के लिए पूरा रूपक खड़ा करना पड़ता था जबकि इन कविताओं में वह अनेकों बार एक सार्थक विशेषण के प्रयोग से सारा चित्र खड़ा कर देते हैं । उदाहरण स्वरूप हम "धेनुएं" कविता को देख सकते हैं । एक बात और बहुत ही महत्वपूर्ण है । इन कविताओं के बिम्बों में संक्षिप्तता, घनत्व और मूर्तिमत्ता अपना सानी नहीं रखती है ।

वैसे यहाँ पल्लव के बिम्बों की ताजगी नहीं दिखायी देती । यहाँ बिम्ब प्रतीक की ओर झुके है । दूसरे शब्दों में यदि मैं कहूं तो ये "सिम्बालिक इमेज़ेज" है ।

इस काव्य-संग्रह के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के मत-मतान्तरों को भी देख लेना आवश्यक जान पड़ता है । सर्वप्रथम अजित कुमार के इस कथन को लिया जाय । वह लिखते हैं कि - पंत जी की ये कविताएं बोध के उस स्तर पर पहुंचकर लिखी गयी प्रतीत होती हैं, जिसके सबसे निकट मुझे अपनी भाषा में जो शब्द मिलता है, वह है - सिद्धि । अंग्रेजी में इसे "रियलाइज़ेशन" कह सकते है । उनकी पिछली कविता में इस सिद्धावस्था के प्रचुर संकेत यत्र-तत्र मिलते रहे है, पर इस संग्रह की रचनाओं में पहली बार उसकी स्थिति प्रारम्भ से अन्त तक दिखायी देती है ।[17] इस संग्रह में पन्त जी जिस शिल्पगत नयी अनुभूति को प्रस्तुत करते है, उसको देखकर शमशेर बहादुर सिंह कहते है कि - "कला और बूढ़ा चाँद" में तो श्री पन्त शिल्पगत बिल्कुल नई अनुभूति प्रस्तुत करते है, जिसको देखकर "ग्राम्या" के बाद सभी ग्रन्थ "वाणी" तक लगभग भूमिका जैसे मालूम होने लगते है । इन दोनों अन्तिम संग्रहों की कविताएं उसी प्रकार मन को और बुद्धि को भी सहज ही आकर्षित करती है जिस प्रकार कवि चाहता है कि वह गहराई तक करें । ··· हिन्दी काव्य में श्री पन्त के कलाकार की श्रेष्ठता अनेक रूपों में सिद्ध है । उन्होंने नयी राजनैतिक और सामाजिक मान्यताओं को काव्य में शब्द दिये है, उनको पहली बार रूपायित किया है । इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए अनथक परिश्रम और साधना की है । एक कल्पनाशील विचारक कवि अप्रस्तुत को प्रस्तुत में जिस हद तक स्पष्टता और प्रवीणता के साथ बाँध सकता है, वह उन्होंने दिखा दिया है । वह उसमें कहीं-कहीं गद्य की सपाट स्पष्टता तक भी चले गये है । पर प्रयोग की दृष्टि से

17· कविता का जीवित संसार - अजित कुमार, पृ·-88.

यह भी महत्वपूर्ण है। हिन्दी को एक नयी विधा की देन है। उनका गहन व्यक्तित्व अनेक संग्रहों में खुलता-बढ़ता और उठता हुआ "वाणी" और "कला और बूढ़ा चाँद" में अधिक समृद्ध होकर अधिक अनुभवी, पुष्ट और गम्भीर होकर फिर अपने उज्ज्वल, सहज, स्निग्ध और नैसर्गिक रूप में सामने आता है। "पल्लव" का किशोर प्रकृति-प्रेमी अपने वर्ड्सवर्थ में पूर्णत: प्रौढ़ होकर फिर संसार की व्यापक प्रकृति लीला में विहार करता नज़र आता है; और उसी पवित्र, उदात्त और असम्पृक्त रूप में जिसमें वह "पल्लव" में था।" पुन: आगे उन्होंने लिखा है कि - "फिर यह नया शिल्प उनका साधनमात्र है, साध्य है उनका दर्शन। उनके यहाँ इस विधा पर जो सहज अधिकार परिलक्षित होता है, उसके अन्दर इतना गहरा रचाव, भाषा के क्षमता की इतनी गहरी पकड़, भावनाओं में इतना गहरा और सहज अनाव है कि यह उम्र से कुछ और लगती हुई भी उनकी अपनी, बिल्कुल अपनी चीज है।"[18]

जैसा कि मैं प्रारम्भ में ही कह चुका हूं कि पन्त जी शाश्वत और सार्वभौम की खोज इन कविताओं में बराबर करते रहे हैं किन्तु ध्यातव्य है कि यह शाश्वत और सार्वभौम इन कविताओं में बिल्कुल नयी पुट में व्यक्त हुआ है। शान्ति जोशी जिन शब्दों में इन कविताओं के सन्दर्भ में लिखती है, वह बहुत ही संगत है। उनके अनुसार "पन्त का यह काव्य प्रेम, आनन्द और तन्मयता का स्फुरण मात्र है। कवि की बुद्धि द्वन्द्वरहित, भावना शान्त और हृदय क्षीर सागर का वासी है। सच्चिदानन्द के क्षीर सागर में न बुद्धि-भाव का विरोध है और न उर्ध्व सम का। उर्ध्व सम बुद्धि और भाव की अन्त:सलिला में घुलमिलकर सहजबोध बन गया है। इस सहजबोध को समझने के लिए पन्त के समस्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बिहंगम दृष्टि

---

18. कृति पंत - अंक, 1960, पृ.-16-17, शमशेर बहादुर सिंह।

डालनी आवश्यक है । समग्र के परिप्रेक्ष्य में उनके काव्यचरण उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी क्रमिक श्रृंखला बनाते हैं । "ग्राम्या" की वेदना "स्वर्णधूलि" में प्रकाश देखती है और "कला और बूढ़ा चाँद" में उस प्रकाश को आत्मसात कर लेती है । आत्मसात सम्यकता की स्थिति है, यह पूर्व के सत्यों का त्याग नहीं करती, उनका समावेश करती है । यही उसकी पूर्णता और सफलता है । "कला और बूढ़ा चाँद" इस पूर्णता और संगति का निर्झर गान है । एकता की अनुभूति का आनंद है ।"[19] शमशेर बहादुर सिंह ने जो यह बात कही कि ये कवितायें "हमसे कुछ विशेष संस्कार और शिक्षा की अपेक्षा रखती हैं, तो यह बात निश्चित रूप से सही है । वस्तुत: इस परिप्रेक्ष्य में ही इन कविताओं को जाँचा परखा जा सकता है । विश्वम्भर मानव का निम्न कथन सही नहीं लगता कि -"भावनाओं के जो चित्र यहाँ वहाँ बिखरे पड़े हैं, वे उनकी एक नयी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हैं । यह प्रवृत्ति है काम की । इस कृति में उनकी काम-भावना असाधारण रूप से उभर आयी है ।"[20] उन्होंने आगे लिखा है कि - "इसका मूल स्वर ही जैसे वासना है - दर्शन तो एक आड़ मात्र है । इस ग्रन्थ में गोरी बाहों, नग्न देह, चंपक जघनों और उभरे वक्षों की चर्चा बार-बार आयी है जिससे एक प्रकार की उत्तेजना शिराओं में जगती है । इसमें उनकी जीवन भर की दमित भावनाएं उभर आयी है और सारी कृति में वासना की एक सरिता सी दिखायी देती है ··· । संक्षेप में कहना चाहें तो "कला और बूढ़ा चाँद" कामजन्य दिवास्वप्नों से उत्पन्न एक विलक्षण सृष्टि है जो छायावादी काव्य की एक पतनशील दिशा का संकेत तो करती है; लेकिन जिसका युग-जीवन और युग-धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं ।"[21]

19· पन्त-जीवन और साहित्य, शांति जोशी, पृ·-346.
20· सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ·-283-290.
21· सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर मानव, पृ·-283-290.

वस्तुत: ये कवितायें जिस भावोन्मुक्तता में लिखी गयी हैं, उसमें सहजता एवं स्वाभाविकता के कारण एक अनग ढंग का काव्यगत न कि गद्यवत् प्रवाह दिखायी पड़ता है। अब इस पूरे विवेचन-विश्लेषण को रामस्वरूप चतुर्वेदी के निम्न उद्धरण से, जो कि मुझे इस काव्य-संग्रह के सन्दर्भ में बहुत ही तर्कसंगत लगता है, समाप्त करूंगा। वह लिखते हैं कि - संवेदन की उन्मुक्तता भाषा-शिल्प, ध्वन्यात्मक विधान सबमें परिलक्षित है छायावादी काव्य की भद्रता तो यहां है, पर उतनी अनावश्यक लज्जा और सुकुमारता नहीं है। यह अवरोध-हीनता पाठक के लिए अधिक प्रिय है, क्योंकि ऐसे रचना-विधान में कवि के साथ वह अपने आपको भी सहयोग की स्थिति में पाता है। कवि की उन्मुक्तता केवल मानसिक चिन्तन के स्तर की ही नहीं है। "कला और बूढ़ा चांद" की पंक्ति-पंक्ति में कवि ने शरीर की जय घोषित की है। ग्रीक कलाकारों की भाँति शरीर उसके लिए मात्र विलास का उपकरण न रहकर सौन्दर्य का अधिष्ठान बन गया है। कवि के अनेक चित्रांकनों में शरीर उन्मुक्त (Nude) है, नंगा (Naked) नहीं। इन दोनों स्थितियों का अन्तर सर कैनेथ क्लार्क ने बड़ी गहरी अन्तर्दृष्टि से उद्घाटित किया है। नंगे होने का अर्थ है, वस्त्रों से विहीन होना, और यह शब्द कुछ आपत्तिजनक व्यंजना प्रस्तुत करता है। परन्तु "न्यूड" (उन्मुक्त) शब्द सुसंस्कृत प्रयोग में असुखद भाव का बोध नहीं कराता। इस शब्द से जो भाव चित्र उभरता है वह किसी निरीह और सिकुड़े सिकुड़ाये शरीर का नहीं, वरन् एक संतुलित, समृद्ध और विश्वासयुक्त शरीर का है : शरीर जो पुनर्गठित हुआ हो।" पुन: आगे उन्होंने लिखा है कि - "यों वह कभी-कभी देह से ऊबकर रस-स्रोत फिर से मन में देखने लगता है - "रस स्रोत मन में है, सौन्दर्य आनन्द भीतर है - देह में न खोजो।" पर शरीर का ऐसा तिरस्कार "कला और बूढ़ा चांद" में विरल है। कवि ने उसे एक निश्चित यथार्थ के रूप में स्वीकार किया है। शरीर का अन्वेषण और पुनरान्वेषण सूक्ष्म सौन्दर्यबोध द्वारा ही सम्भव है।

और यह कवि के विकसित सौन्दर्य बोध का साक्षी है। ••• कवि ने विकास किया है वाह्य संदर्भों की दृष्टि से भी और अपनी सृजन-प्रक्रिया की दृष्टि से भी।"[22]

.....

---

22. रामस्वरूप चतुर्वेदी : कादम्बिनी (जनवरी, 1961), पृ.-125-126.

अध्याय - 4

"कला और बूढ़ा चाँद" तथा नयी कविता

"कला और बूढ़ा चाँद" का प्रकाशन दिसम्बर सन् 1959 में हुआ और इसका रचना-काल सन् 1958 के अक्टूबर-नवम्बर के महीने हैं।[1] नई कविता के उद्भव-काल के सन्दर्भ में साहित्यकोशकार की व्याख्या है - "ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता "दूसरा सप्तक" (1951) ई॰ के बाद की कविता को कहा जा सकता है किन्तु इस ऐतिहासिक क्रम के अतिरिक्त भी "नई कविता" का वास्तविक रूप उस समय प्रतिष्ठित हुआ, जब "दूसरा सप्तक" के बाद के कवियों ने सारी कविता को "दूसरा सप्तक" के निकटवर्ती पाते हुए किन्हीं अर्थों में कुछ भिन्नता का अनुभव भी किया। नई कविता मूलत: 1953 ई॰ में "नये पत्ते" के प्रकाशन के साथ विकसित हुई और जगदीश गुप्त और राम-स्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले संकलन "नई कविता" (1954 ई॰) में सर्वप्रथम अपने समस्त सम्भावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आयी।[2] कई लोगों ने "नई कविता" के नाम -औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगाया और इक्का-दुक्का लोग आज भी हैं जो प्रश्न चिह्न लगाते है। इस

1॰ सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य, शान्ति जोशी, पृ॰-340.
2॰ साहित्य-कोश, भाग-1, पृ॰-401-402.

सन्दर्भ में शम्भूनाथ सिंह के निम्न वक्तव्य को उद्धृत करना यहाँ प्रासंगिक होगा । उनका कहना है कि - "कुछ लोग नयी कविता के नाम पर ही यह आपत्ति करते हैं कि आज यह पुरानी कविता की तुलना में नयी है तो इसका "नई कविता" नाम उपयुक्त है, किन्तु कुछ दिनों बाद या कभी-न-कभी तो उसका ह्रास होगा ही और उसकी जगह दूसरी "नयी कविता" ले लेगी, उस समय इसे किस नाम से पुकारा जायेगा, यह एक मौलिक प्रश्न है जिसका सम्बन्ध केवल नाम से ही नहीं, उस दृष्टिबिन्दु से भी है, जिसके कारण वर्तमान कविता का नाम "नई कविता" पड़ा । हिन्दी की वर्तमान आलोचना कविता को वादों के बन्धन में जकड़कर देखने की अभ्यासी है । छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बाद कौन-सा वाद आया, यह जाने बिना जैसे उसकी गति ही अवरुद्ध हो जाती है । "नई कविता" मे कौन "वाद" है और यदि उसका कोई "वाद" नहीं है, तो वह कविता कैसी ? कुछ इस तरह के विचार हिन्दी के पुराने खेमे के आलोचकों के है । यह बात उन लोगों की समझ में ही नहीं आती कि वादों के बिल्ले के बगैर भी साहित्य हो सकता है और होता है । "नई कविता" नाम से उनके उक्त अभ्यास को धक्का लगता है, जिससे वे इस पर आपत्ति करते है । किन्तु इस वादों वाली बात के अतिरिक्त एक और बात भी है जो नई कविता नाम को सार्थक बनाती है । वह नई कविता की नित्य-नवीनीकरण की प्रवृत्ति है ।[3]

छायावाद के बाद और "नयी कविता" से पूर्व दो वादों की चर्चा मुख्य रूप से रही - एक प्रगतिवाद और दूसरा प्रयोगवाद । पन्त जी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को छायावाद की शाखाओं के रूप में ही मानते रहे है । इसका कारण बताते हुए लिखा है कि - "मैंने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को

---

3. प्रयोगवादी काव्य धारा - प्राक्कथन, पृ.-16.

छायावाद की उपशाखाओं के रूप में इसलिए लिया है कि मूलत: ये तीनों धाराएं एक ही युग-चेतना अथवा युग-सत्य से अनुप्राणित हुई हैं। उनके रूप-विन्यास, भावना-सौष्ठव में कोई विशेष अन्तर नहीं और उनका विचार-दर्शन भी धीरे-धीरे एक दूसरे के निकट आ रहा है। ये तीनों धाराएं एक दूसरे की पूरक हैं।"[4] इन तीनों की अपने आप में क्या विशिष्टता है? इस पर विचार करते हुए पन्त जी लिखते हैं कि - छायावादी छन्दों में आत्मान्वेषण की शान्त-स्निग्ध अन्त:स्वर-संगति है, जो अपने दुर्बल क्षणों में कोरा प्रेरणा-शून्य कोमल लालित्य बनकर रह जाती है। प्रगतिवादी छन्दों में सामूहिक आन्दोलन का कोलाहल तथा स्पन्दन-कम्पन है, जो अधिकतर खोखली हुंकार तथा तर्जन-गर्जन बनकर रह जाता है। प्रयोगवादी छन्दों में एक करूणा-मिश्रित नींद भरी स्वप्न मर्मर है, जो प्राय: आत्मदया में द्रवित होकर प्रणय के आंसुओं तथा उच्छ्वासों की निरर्थक सिसकियों में डूब जाता है। छायावादी प्रीति-काव्य सौन्दर्य-भावना-प्रधान है, प्रयोगवादी प्रणय-गीत-राग और वासनामूलक।" आगे पुन: लिखते हैं - "अपने स्वस्थ रूप में छायावाद एक नवीन आध्यात्म को वाणी देने का प्रयत्न करता रहा। प्रगतिवाद एक नवीन सामूहिक वास्तविकता को तथा प्रयोगवाद सामूहिक साधारणता के विरोध में व्यक्ति के सूक्ष्म गहन वैचित्र्य से भरी कुंठित अहंता को। काव्य की ये तीनों धाराएं आज की युग-चेतना के ऊर्ध्व-व्यापक तथा गहन संचरणों को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रही हैं और तीनों ही एक दूसरे से अभिन्न रूप से सम्पृक्त हैं।"[5]

नयी कविता के सन्दर्भ में पन्त जी का कहना है कि - "नयी कविता" का आरम्भ मेरी समझ में छन्द, भाव-बोध आदि सभी दृष्टियों से छायावाद

---

4. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, "आज का कविता और मैं" पृ.-335.
5. वही, पृ.-334.

युग से होता है ।"[6] एक दूसरी जगह नयी कविता पर चर्चा करते हुए पन्त जी लिखते हैं कि - "नयी कविता" के सम्बन्ध में इधर कुछ वर्षों से पुस्तकों और विशेषकर मासिक पत्र-पत्रिकाओं में जो लेख और निबन्ध प्रकाशित हो रहे हैं, उनसे इस नवीन साहित्य स्रोतस्विनी के मर्म, मधुर, मुखर सौंदर्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ चुका है । यह ठीक है कि ये निबन्ध या तो नयी कविता के व्याख्याताओं तथा पक्षपातियों की ओर से लिखे गये हैं जिनमें प्राय: ही नयी काव्य-प्रवृत्तियों के बारे में अतिरंजनाओं तथा अतिशयोक्तियों का बाहुल्य मिलता है या ये आलोचनात्मक लेख विपक्षियों की लेखनी से नि:सृत हुए हैं, जिनमें नयी कविता के सम्बन्ध में पूर्वाग्रहजनित आक्षेप ही अधिकतर पाये जाते हैं । इस प्रकार के दृष्टिकोण एकांगी होने के कारण इस नवीन साहित्य-धारा को समझने के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि सत्साहित्य को न पूर्वाग्रहपीड़ित आलोचनाएं ही मार सकती हैं और न अति-रंजनाएं ही असत् साहित्य को दीर्घ जीवन प्रदान कर सकती हैं । किसी भी साहित्य-धारा का उपयोगी अध्ययन तभी सम्भव हो सकता है, जब हम उसपर निष्पक्ष सन्तुलित एवं सहानुभूति पूर्वक विचार करें ।"[7]

ध्यातव्य है कि छायावाद से लेकर आज तक साहित्य में यथार्थवाद को लेकर बराबर चर्चा होती रही है । न केवल प्रगतिवादी अपितु प्रयोगवादी कवि भी यथार्थवाद को अपने अनुभव खण्ड की अभिव्यक्ति का मूल मुद्दा बनाये रहे । यह बात दूसरी है कि प्रगतिवादियों का यथार्थवाद समष्टिगत रहा, तो प्रयोगवादियों का व्यक्तिगत । और कुछ हद तक आज भी कुछ लोग साहित्य को विवेचित-विश्लेषित करने के लिए "यथार्थवाद" को ताले की कुंजी की तरह प्रयोग करने की बात करते हैं । इस "यथार्थवाद" शब्द पर छायावाद

---

6. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-368.
7. पन्त ग्रन्थावली, मेरी दृष्टि में नयी कविता, खण्ड-6, पृ.-326-27.

के प्रतिष्ठापक कवि जयशंकर प्रसाद ने बहुचर्चित "यथार्थवाद और छायावाद" निबन्ध लिखते हुए यह बताया कि "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है - "लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात।" आगे उन्होंने लिखा कि "राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य, जिसे पहले लोग, अकिंचन समझते थे, वही क्षुद्रता में महान् दिखलायी पड़ने लगा।" यथार्थ पर चर्चा "नयी कविता" के दौरान भी खूब हुई। "नयी कविता के प्रतिमान" लिखने वाले लक्ष्मीकान्त वर्मा ने साहित्यकार की सक्रियता का परिचय उसके यथार्थ-बोध में खोजा और लिखा कि - "यथार्थ की गतिशीलता (डायनामिक्स) मनुष्य की विशिष्ट चेतना पर जिस प्रकार आक्रमण करती है, उससे दो प्रकार की स्थितियाँ उत्पन्न होती है। पहली स्थिति तो यह कि मनुष्य-मात्र उस यथार्थ का चित्रण (रिप्रोड्यूस) करके अपनी क्रियाशीलता को सन्तुष्ट कर ले और दूसरे यह कि वह स्वयं अपने विशिष्ट गुणों से यथार्थ को प्रभावित करे, उसे नया परिप्रेक्ष्य दे, उसे नये आयामों तक ले जाये।"[8] सभी तो नहीं, किन्तु कई नये कवियों ने यथार्थ को सन्दर्भों के असली स्वरूप में देखने की बात की और जयशंकर प्रसाद ने जिस क्षुद्रता में महान् को देखा था, और जिसकी चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूं, उसको सही जमीन मुहैया की। लक्ष्मीकान्त वर्मा उस सन्दर्भ की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि - यह सन्दर्भ है यथार्थ से ओत-प्रोत जीवन की व्यापकता और यह परिवेश है - आज की मर्यादित वैज्ञानिकता, जिसके सामने रहस्य, अन्धविश्वास, निरपेक्ष सत्य, अखण्ड आत्मबोध इत्यादि केवल कुहासे की घनीभूत अल्पज्ञता ही प्रतीत होते है। यथार्थ और विवेक यह दोनों आधुनिकता और वैज्ञानिकता के सामर्थ्य में विश्वास करते है, साथ ही हमारी अभिरुचि को अधिक प्रौढ़ और सहायक रूप देने में सहायक होते है।"[9]

---

8. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ.-109-10.
9. वही, पृ.-78.

व्यक्ति और "समूह-समष्टि" पर नये कवियों का दृष्टिकोण काफी स्पष्ट रहा है जैसा कि गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है कि - "नयी कविता का विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है। उसने निराकार "समूह-समष्टि" का पक्ष ग्रहण नहीं किया, यद्यपि इकाई को सामाजिक सन्दर्भ से अलग नहीं देखा और न दूसरी ओर आत्मलीन एकांतिक व्यक्तिवादिता को ही स्वीकार किया।"[10] नेमिचन्द जैन ने महादेवी के काव्य का उदाहरण देते हुए लिखा कि - बाह्य के साथ सबसे दुर्बल और अल्प सम्बन्ध का अच्छा उदाहरण है - महादेवी का काव्य, जो घोर आत्मकेन्द्री और कल्पना-प्रधान है आज के समाज में जीवन के संघर्ष से विच्छिन्न मन किस प्रकार कल्पना-विलास और भावनात्मकता के त्रास में अपने-आपको खो देता है, महादेवी का काव्य इसका प्रमाण है।"[11]

यथार्थवाद पर विशेष रूप से चर्चा यहाँ मैंने इसलिए की कि नयी कविता के कवियों में जो दो वर्ग बने थे, उसमें से एक यथार्थवाद के सही सामाजिक सन्दर्भ को लेकर तथा छायावादी रूमानियत से अलग होकर काव्य-सृजन को महत्व दे रहा था और दूसरा वर्ग अपने को प्रयोगवादी काव्य मूल्यों से अलग करके नयी कविता के नये पन में शामिल हुआ किन्तु उसका नयापन बहुत-सी पिछड़ी काव्यमान्यताओं व छायावादी रूमानियत से अलग न हो सका। चूंकि "कला और बूढ़ा चाँद" का रचना-काल 1958 है और 1958-59 "नयी कविता" के विकास का चरमोत्कर्ष भी है, इसलिए नयी कविता और "कला और बूढ़ा चाँद" के काव्य-सर्जकों के बीच कोई न कोई संगति खोजी जा सकती है और यह भी माना जा सकता है कि पन्त जी इन कविताओं में नयी कविता के काव्य-मूल्यों से अनजान नहीं है, किन्तु जैसा कि मैं कह दूँ कि पन्त

---

10. नयी कविता : सीमाएं और सम्भावनाएं - गिरिजाकुमार माथुर, पृ.-133.
11. बदलते परिप्रेक्ष्य - नेमिचन्द जैन, पृ.-53.

जो की कविताएं उनके व्यक्तित्व से परिवेश की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होती है । पन्त जी के यहाँ अन्तर्मुखता है किन्तु यह ज्ञेय की अन्तर्मुखता नहीं है अपितु अलग और एकान्त में बैठे हुए उस व्यक्ति की परिवेशगत सोच से उपजी हुई अन्तर्मुखता है, जिसमें खोज तो शाश्वत और सार्वभौम की है, किन्तु सोच एवं विचार का स्तर नितान्त निजी और निश्चित घेरे में ही है । यही कारण है कि यदि हम यथार्थवाद को इन कविताओं में ढूँढे, जैसी इसकी परिभाषा उस समय प्रचलित थी, तो असम्भव है । इसकी रूमानियत भी बिलकुल अलग किस्म की रूमानियत है । यह नये कवियों की रूमानियत नहीं, अपितु उस कवि की रूमानियत है, जो छायावाद और छायावाद के बाद के काव्यान्दोलनों को बराबर प्रभावित करता रहा और प्रभावित होता रहा तथा जिसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य-संस्कार इस प्रकार जड़ जमाकर बैठे रहे, जिनसे उसकी मुक्ति नहीं हो सकी । स्पष्ट है कि "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताएं अलग काट-छाँट में आयी है और बूढ़े चाँद में पन्त की कला ने नवीन सम्भावनाएं देखी है । इस प्रकार "कला और बूढ़ा चाँद" में पन्त ने फिर से वास्तविक काव्य-दिशा का प्रत्यय पाया है । इस काव्य-संग्रह में उनकी रचनाएं अधिक स्वच्छन्द है । इन रचनाओं पर दर्शन का अतिरिक्त बोझ नहीं रह गया है । यद्यपि उनमें दार्शनिकता है, पर ये अधिक काव्यात्मक है । इस रचना में मुक्त छन्दों का प्रयोग काव्य-सहजता का परिचायक है । पूर्ववर्ती कृतियों में छन्दों के शिकंजे में जकड़कर पन्त की दर्शन-प्रमुख सृष्टियाँ कृत्रिम और काव्यहीन बनती जा रही थीं । केवल अकाव्यात्मक पद-विन्यास ही नहीं, अनावश्यक पद रचना भी भार बनकर आयी थी । इस अन्तिम कृति में पन्त उस भारवाहिता से मुक्त हो चले है । प्रतीकवादी कवियों की भाँति पन्त ने "कला और बूढ़ा चाँद" में सुन्दर बिम्बों का उपयोग भी किया है और ऐसा जान पड़ता है कि पन्त का दर्शनाक्रान्त काव्य-युग बीत गया है और अब वे नयी, गम्भीरतर और

स्वच्छतर काव्य-भूमिका के समीप पहुंच गये है ।"[12]

डा॰ नामवर सिंह ने लिखा है कि - "प्रयोग" शब्द को वाद-दूषित पाकर "नयी कविता" नामक संज्ञा का प्रचलन हुआ । 1951 में "दूसरा सप्तक" के प्रकाशन के साथ "नयी कविता" के जिन सिद्धान्तों का सूत्रपात किया गया, उनका विस्तार "तीसरा सप्तक" के प्रकाशन-काल 1959 तक अवाध गति से होता रहा ।"[13] ध्यातव्य है कि नयी कविता में वाद और शील का प्रश्न नहीं उठा । प्रयोगवादियों की वैयक्तिकता यहाँ जिन्दगी व समाज के नित परिवर्तनशील युगबोध को मुखरित करने लगी । इसीलिए "साहित्य-कोश" की यह बात तर्कसंगत लगती है कि - "जिस काव्य के ऊपर मात्र प्रयोग-वाद का विवादास्त आरोप और प्रतिआरोप लगाया जा रहा था, उससे भिन्न स्तर पर सर्वथा विषय-वस्तु की नवीनता को लेकर नयी कविता को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता अनुभव करके 1954 ई॰ में प्रयोग की "साहित्य-सहयोग" नामक सहकारी संस्था ने नयी कविता का प्रकाशन किया । "नये पत्ते" "दो और तीन" में तथा आलोचना के कुछ अंकों में "नयी कविता" की मूल स्थापना करते हुए इस बात की चेष्टा की गयी कि इस नयी काव्य-धारा को उस वैयक्तिक यथार्थ और सामाजिक यथार्थ के साथ उन प्रतिमानों को लेकर विकसित किया जाय जो आज के भाव-बोध को वहन करते हुए सर्वथा नयी दृष्टि के साथ अवतरित हो रहे है । नयी कविता का मूल स्रोत आज के युग-सत्य और युग-यथार्थ में निहित है ।"[14] नयी कविता में बौद्धिकता पर विशेष बल दिया गया । मानव-जीवन के हरेक क्षेत्र में बौद्धिकता को स्वीकृति मिली । जगदीश गुप्त ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि -

---

12॰ कवि पंत - नन्ददुलारे वाजपेयी - प्रस्तोता - शिवकुमार मिश्र, पृ॰-96.
13॰ कविता के नये प्रतिमान, पृ॰-26.
14॰ साहित्य-कोश, भाग-1, पृ॰-402.

नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विकस रही है अत: उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मकता मिलती है, यथार्थ-चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये-नये अर्थों को ध्वनित करने वाला अभिनव प्रतीक विधान आदि सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है।" [15]
पन्त जी ने स्वयं लिखा है - "जैसे छायावादियों में भावनात्मक बुद्धि मिलती है, वैसे नये कवियों में एक नयी बौद्धिक भावना का उदय हुआ है, जो अपने साथ एक नये कलाबोध को भी जन्म दे रही है।"[16]

जिस तरह से पन्त जी प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को छायावाद की उपशाखाओं के रूप में मानते थे, वैसे ही नयी कविता के सन्दर्भ में भी उनकी धारणा थी। वह लिखते हैं कि - "नये मूल्य की खोज की दृष्टि से मैं प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता को भी केवल छायावाद अथवा उस युग के नये काव्य-संवरण की ही रूपान्तरित विधाएं मानता हूँ, क्योंकि इनमें अभिव्यक्ति जनित समानता तो पायी ही जाती है, इन सभी वादों में एक ऐसा केन्द्रीय अन्त: संयोजन एवं संगति भी मिलती है जो उन्हें एक ही मानव-मूल्य के विभिन्न आयामों के रूप में नवीन अर्थवत्ता तथा सार्थकता प्रदान कर उस एक ही मूल्य के विविध पक्षों को हमारे सामने अभिन्न-एकता तथा परिपूर्णता में उपस्थित करती है।"[17] भाषा की दृष्टि से भी नयी कविता और प्रयोगवादी कविता में बहुत साम्य है। फिर भी प्रयोगवाद में जो कई भाषाओं और बोलियों की मिलावट दिखायी देती है, यहाँ देखने को नहीं मिलेगी। इन कविताओं में खड़ी बोली का साफ-सुथरा एवं सुगम रूप स्पष्ट है। प्रयोग-वादी काव्य-भाषा की सर्जनात्मकता के प्रयत्न यहाँ भी दिखायी देते है। एक

---

15. नयी कविता में रस और बौद्धिकता, श्री जगदीश गुप्त, पृ.-103.
16. छायावाद पुनर्मूल्यांकन, ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-126.
17. छायावाद पुनर्मूल्यांकन, ग्रन्थावली, खण्ड-6, पृ.-119.

बात महत्वपूर्ण है कि इसकी भाषागत, साफ-सुथरापन, सरलता एवं सुगमता ने इसको गद्यमय बना दिया जिसकी वजह से एक समस्या के रूप में भाषा की नीरसता एवं शुष्कता दिखायी देती है । वस्तुत: इसीलिए गद्यमय भाषा को परिष्कृत करने के लिए तुक, ताल तथा लययुक्त गद्य की वकालत कई लोगों ने की । किन्तु जैसा कि बहुचर्चित है कि जगदीश गुप्त ने शब्द की लय और अर्थ की लय का पार्थक्य भाषा के इसी रूप को दृष्टिगत रखते हुए किया । उन्होंने कहा कि - "कविता को केवल शब्दलय के सहारे पढ़ने वाला बहुत कुछ खो देता है, इसके विपरीत सही पाठ-विधि उसके सूक्ष्म भावों तथा संकेतित अर्थों को उभारने में काफी सहायक होती है । यह पाठ-विधि छन्द के आरोह-अवरोह पर आश्रित रहती है जिसका निश्चय "अर्थ की लय" करती है ।[18]

छायावाद और छायावाद के बाद तथा नयी कविता से पूर्व कविताओं का ढांचा मुख्य रूप से छन्दों पर आधारित था, किन्तु छायावाद में ही इसके विरुद्ध विद्रोह हो चुका था । अज्ञेय ने जैसा कि लिखा है - "छायावादी विद्रोह के मूल में यह धारणा निहित थी कि काव्य और संगीत दोनों का मूल तत्व लय है । अत: कविता गीतात्मक भी हो सकती है और लययुक्त छन्दों में भी हो सकती है ।[19] किन्तु नयी कविता तक आते-आते कथ्य में आधुनिक भाव-बोध के कारण जो नवीनता आयी उससे यह अनिवार्य हो गया कि नये कवि को नये-नये प्रयोग से बचना सम्भव नहीं है तथा यह भी स्पष्ट हो गया कि नियमित छन्द-विधान में इस नवीन काव्य-सामग्री की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है । अपने आरम्भ में नयी कविता ने छन्दों को जो नया रूप दिया, वह वस्तुत: मुक्त छन्द की सीमा में ही था जबकि इसकी

---

18. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं, डा. जगदीश गुप्त, पृ.-90.
19. तारसप्तक, अज्ञेय, पृ.-308, 309.

आवश्यकताएं काफी बढ़ी-चढ़ी थीं । इसीलिए नयी कविता ने लय पर ध्यान तो दिया किन्तु तुकों की उपेक्षा की । अज्ञेय को लिखना पड़ा कि - "आजकल की कविता बोलचाल की अन्विति माँगती है, पर गद्य की लय नहीं मागती। तुक-ताल का बन्धन उसने अनात्यन्तिक मान लिया है, पर लय को वह उक्ति का अभिन्न अंग मानती है । वाह्य अनुशासन को हेय नहीं तो गौण मान लेने पर आंतरिक अनुशासन को वह अधिक महत्व देती है ।"[20] डा॰ विद्या-निवास मिश्र ने लिखा कि - "हिन्दी की प्रवृत्ति तुकों की सतही और बाहरी बंदिश स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है और न तैयार है एक निश्चित परिणाम वाली पंक्ति को अर्थ की इकाई मानने के लिए ।"[21] ध्यातव्य है कि उधर एक जगह अज्ञेय ने लय को तो स्वीकार किया है किन्तु गद्य की लय को नकारा भी है किन्तु नयी कविता में धीरे-धीरे गद्योन्मुखी कविताओं की संख्या कुछ हद तक बढ़ी थी । पंत जी के "कला और बूढ़ा चाँद" के इस "रश्मि-पदी काव्य" से इसकी कड़ी को जोड़ा जा सकता है मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस शब्दगत लय को कविता का आन्तरिक अनुशासन माना गया था, उसी के प्रतिकार स्वरूप ऐसी ही कविताओं के सन्दर्भ में एक नया तथ्य और उद्घाटित होता है और वह नया तथ्य है - "अर्थगत लय" । डा॰ जगदीश गुप्त ने इसका प्रयोग पूरी नयी कविता के सन्दर्भ में किया, जिसकी वजह से बहुत से लोगों को यह मान्य नहीं हो सका किन्तु यदि इसका प्रयोग "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं के सन्दर्भ में और इसी पैटर्न पर लिखी गयी दूसरी कविताओं के सन्दर्भ में यदि हम करें, तो यह उचित लगता है । हरिवंशराय बच्चन ने इसीलिए पन्त और उनके इस संग्रह की कविताओं तथा तत्कालीन काव्य-परिवेश पर विचार करते हुए लिखा है कि - इस समय हिन्दी-काव्य

20॰ नयी कविता - अज्ञेय, अंक-2, सन् 1955.
21॰ पाँच जोड़ बाँसुरी, नयी कविता : गीत, पृ॰-127.

की प्रचलित विधाओं पर एक नज़र डालना होगा । मोटे तौर पर कविताएं या तो छन्दोबद्ध होती है या मुक्त छन्द में जिनमें एक प्रकार की ध्वन्यात्मक लय निहित होती है या तथाकथित नयी कविता में प्रयुक्त उस स्वच्छन्द छन्द में जिसमें "अर्थ की लय" बतायी जाती है । पहली बार इन कविताओं को देखने से ऐसा लगता है कि पन्त जी ने जैसे इस नयी कविता के अर्थलयी छन्द को अपनाया है । आगे उन्होंने कुछ व्यंग्य के भाव में लिखा है कि - "कुछ नयी कविता के पैरोकारों को भी यह भ्रम हुआ है और उन्होंने शोर मचाना शुरू कर दिया है - "तुम कहाँ इधर चले आ रहे हो, यह हमारा घेरा है, हमारा चौका है, न तुमने अवचेतन की नदी में स्नान किया, न तुमने फ्रायड से दीक्षा ली, न तुमने माथे पर ईलियट की छाप लगवायी - अछूत । अछूत ।। आगे बच्चन जी का निष्कर्ष है कि - वास्तव में इसकी शैली इन तीनों से भिन्न है ।"[22] अजित कुमार का भी कहना है कि - " ... प्रस्तुत संग्रह (कला और बूढ़ा चाँद) की कविताएं शैली की दृष्टि से एक सुदृढ़ और ठोस आधार-भूमि पर स्थित है और उनका बिम्ब उतना ही वैभवशाली है जितना कि उदात्त-संयत रचना तथा कोमलकान्त पदावली के लिए विख्यात इस कवि का सदा से रहा है । छन्दबद्ध न होते हुए भी ये कविताएं कला की दृष्टि से पंत जी के समस्त पिछले काव्य के ही समान पुष्ट, परिपक्व और समर्थ हैं तथा उसी परम्परा को आगे बढ़ाती है । मैं तो यह भी कहना चाहूँगा कि इस संग्रह की कविताएं "गद्य में लिखे हुए गीत" हैं और इनमें भी काव्य-रचना का वही पैटर्न अपनाया गया है जो पंत जी की अन्य गीतात्मक तथा छन्दबद्ध कविताओं में मिलता है । एक तथ्यकथन, किंचित बिम्बों-छायाओं की सहायता से उसका विवेचन और परिवर्धन तथा अन्तिम पद या पंक्तियों में उसी तथ्य

----

22. नये पुराने झरोखे, पृ.-220.

का एक प्रकार के नूतन और सारगर्भित अर्थ में नवोन्मेष । यही इस संग्रह की तमाम कविताओं का पैटर्न है और इसीकारण मैं उन्हें स्वरूपगत एकरूपता के बावजूद नयी कविता से भिन्न मानता हूँ और पुरानी कविता की श्रेणी में रखना चाहता हूँ । इस प्रसंग में यह भी द्रष्टव्य है कि "कला और बूढ़ा चाँद" पंत जी की पिछली कविता की ही एक अविच्छिन्न कड़ी है ··· जिस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, वह यह है कि स्वरूप की दृष्टि से भले ही ये कविताएँ वर्तमान नयी कविता से किसी स्थल पर मिल जायँ, विषय-वस्तु, मूड, अप्रोच स्थापना आदि किसी भी दृष्टि से एक-दूसरे में कोई साम्य नहीं है ।"[23]

नयी कविता के बहुविध रूप पर पन्त जी ने स्वयं टिप्पणी की है और जहाँ तक छन्दों का प्रश्न है तो उनका कहना है कि - "छन्दों की दृष्टि से नयी कविता ने कोई महत्वपूर्ण मौलिक प्रयोग नहीं किये । अधिकतर छन्दों का अंकुश छोड़कर तथा शब्दलय को न संभाल सकने के कारण अर्थलय अथवा भाव-लय की खोज में - जो छायावादी कविता में शब्दलय के अतिरिक्त अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती रही है - वह लयहीन, स्वर संगतिहीन और प्राय: गद्यबद्ध पंक्तियों को काव्य के लिबास में उपस्थित कर रही है, जो बहुधा भावाभि-व्यक्ति करने में असमर्थ प्रतीत होती है । रूप और भावपक्ष की अपरिपक्वता के कारण अथवा तत्सम्बन्धी दुर्बलता को छिपाने के कारण वह शैलीगत शिल्प को ही अधिक महत्व देती है और व्यक्तिगत होने के कारण शैली एक ऐसी वस्तु है कि उसकी दुहाई देकर कृतिकार कुछ अंशों तक सदैव अपनी रक्षा कर सकता है । एक विचित्र बात है कि कहीं कहीं पन्त जी ने नयी कविता को "प्रयोगवादी काव्य" कहा है । उनका कहना है कि - "नयी कविता या

23· कविता का जीवित संसार - अजित कुमार, पृ·-85-86.

प्रयोगवादी काव्य का संचरण बहुमुखी और बहुरूपिया संचरण है : शाब्दिक भाक्कि संगति के अभाव में काव्य-चेतना विभिन्न धाराओं में विकीर्ण हो गयी है।"[24] एक दूसरे स्थान पर पन्त जी लिखते हैं कि - हिन्दी काव्य में आज जो प्रयोगवाद एवं नयी कविता का युग कहलाने लगा है, वह कुछ तो प्रगतिवादी काव्य की रूक्षता या शुष्कता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप और कुछ नयी काव्यधारा के रूप में भी "कला के लिए कला" वाले सौंदर्यवादी सिद्धान्त को, ज्ञात-अज्ञात रूप से अपनाने लगा है। इस समय उसका सर्वाधिक आग्रह रूपविधान तथा शैली के लिए प्रतीत होता है। भावपक्ष को वह वैयक्तिक निधि मानता है। उसकी सार्वजनिक उपयोगिता, उदात्तता एवं गाम्भीर्य की ओर वह अधिक आकृष्ट नहीं। भावों एवं मान्यताओं की दृष्टि से नयी कविता अभी अपरिपक्व, अनुभवहीन तथा अमूर्त है। वह अन्धकार में कुछ टटोल भर रही है। पर इस टटोलने में उसका उद्देश्य किसी प्रकार के सत्य की खोज नहीं। सत्य में उसकी आस्था नहीं - प्रतिदिन के, क्षण के बदलते हुए यथार्थ ही में है। वह टटोलने के ही भावुक तथा सुख-दुःख भरे प्रयत्न को अधिक महत्व देती है। उसी में उसके मानस में रस-संचार होता है, यह उसकी किशोर प्रवृत्ति है। भाव या वस्तु-सत्य, जिसका मानव-जीवन कल्याण के लिए उपयोग हो सके, उसे नहीं रूचता। वह उसकी काव्यगत मान्यताओं के भीतर समा भी नहीं सकता - यह तो साधारणीकरण की ओर बढ़ना होगा। उसे विशेषीकरण से मोह है। वह प्रतीकों, बिम्बों, विधाओं और शैलियों को जन्म दे रही है। वह अतिवैयक्तिक रुचियों की तथ्ययुक्त तथा आत्म-मुग्ध कविता है। आज जो एक सर्वदेशीय संस्कृति तथा विश्व-मानवता एवं नव मानवता का प्रश्न है। उसकी रूझान नहीं। उसकी मानवता वैयक्तिक एवं कुछ अर्थों में अतिवैयक्तिक

---

24. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, "नयी काव्य-चेतना का संघर्ष", पृ.-71.

मानवता है । सामाजिक दृष्टि से वह समाजीकरण के विद्रोह में आत्मरक्षा तथा व्यक्तिगत अधिकारों के प्रति सचेष्ट मानवता है ।"[25] नयी कविता में क्षणिकवाद, सम्प्रतिवाद, अस्तित्ववाद के सन्दर्भ में उनका कहना है कि – व्यक्तिक-सामूहिक विचारधाराओं एवं जीवन-परिस्थितियों की विषमताओं के कारण भी आज जो स्थिति उत्पन्न हो गयी है, उससे भी क्षणिकवाद, सम्प्रतिवाद, अस्तित्ववाद जैसी अनेक प्रकार की अनास्थापूर्ण भावनाओं तथा विचार-धाराओं का प्रभाव नयी काव्य-चेतना में पड़ा है जो मुख्यत: यूरोप के कुण्ठाग्रस्त, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की देन है । आगे नयी कविता के भविष्य के सन्दर्भ में पन्त जी लिखते हैं कि - "इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी स्थिति सदैव नहीं रहेगी और नयी काव्य-चेतना यथा समय अधिक परिपक्व तथा विकसित रूप ग्रहण कर सामने आयेगी । आज की नयी कविता अपनी वर्तमान स्थिति में भी मध्य-युगीन नैतिक पूर्वाग्रहों से मुक्त तथा वर्तमान युग-संघर्ष के प्रति जागरूक है । वह भविष्य में नव-मानवतावाद का सशक्त, अन्त: स्पर्शी काव्य गुण सम्पन्न माध्यम बन सकेगी इसमें मुझे सन्देह नहीं । आज भी अनेक तरुण प्रतिभाशाली नये कवि हिन्दी काव्य-चेतना के समस्त विकास से अवगत, उसकी भावी गतिविधियों के प्रति जाग्रत-अत्यन्त सफल कृतिकार हैं, जिनके स्वस्थ सबल कन्धों पर भावी कविता की पालकी को आगे बढ़ता देखकर मन में प्रसन्नता होती है ।"[26]

पन्त जी का ही इतना लम्बा उपर्युक्त उद्धरण देने का कारण यहाँ यह था कि नयी कविता पर पन्त जी की धारणा को विस्तार से समझ लिया जाय । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नयी कविता के तथाकथित नूतन प्रयोग और प्रयोगवाद में प्रयोग शब्द को "वाद" दूषित पाकर "नयी

---

25. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, नयी काव्य-चेतना का संघर्ष, पृ.-370-71.
26. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, नयी काव्य-चेतना का संघर्ष, पृ.-371-72.

कविता" के प्रचलन को उचित ठहराते हुए भी उसकी कुछ कमजोरियों से पन्त जी अनजान नहीं थे। नयी कविता को कहीं-कहीं प्रयोगवाद शब्द का समानार्थी रखने का कारण भी यह स्पष्ट कर देता है कि नयी कविता प्रयोगवाद का ही विस्तार थी तथा जिसमें यह ध्वन्यार्थ भी था कि कविता अब प्रयोगवाद की कुण्ठित जकड़न से मुक्त होकर ज्यादा खुली आबोहवा में साँस लेने लगी है। यह खुली आबोहवा पन्त जी को भी पसन्द आयी और इसीलिए उन्होंने इन कविताओं में रूपविधान की दृष्टि से अपनी पिछली कविताओं की तुलना में नया प्रयोग किया। "साठ वर्ष और अन्य निबन्ध" पुस्तक में "नवमानवता का स्वप्न" (सन् 1945 से 1959 तक) नामक शीर्षक के अन्तर्गत पन्त जी लिखते हैं कि - मेरी सन् '58 की रचनाओं का संग्रह "कला और बूढ़ा चाँद" हाल ही में प्रकाशित हुआ है। ये रचनाएँ रूपविधान की दृष्टि से मेरी पिछली रचनाओं से कुछ भिन्न हैं।" किन्तु पन्त जी का रचा-बसा अनुभव-संसार बहुत सी उन माँगों को कभी भी स्वीकार नहीं कर सका जिनको सामान्यत: युगबोध और कला के प्रयोग के फलस्वरूप हुए ऐतिहासिक बदलाव में देखा जाता है। इस पर मैं स्वयं कुछ लिखूं, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण पन्त जी की यह स्वीकारोक्ति है : - चाहे मैं उत्तर में रहूँ या दक्षिण में, चाहे गावों में रहूँ या शहरों में, मुझे ऐसा प्रतीत होता है रहता मैं अपने ही भीतर हूँ। बाहर की परिस्थितियों से, जिनमें लोग भी हैं, मैं इतना नि:संग एवं अपरिचित रहता हूँ कि जब तक परिस्थितियाँ ही मुझे बाध्य नहीं करतीं, मैं अपनी इच्छा से कहीं आता-जाता नहीं। कालाकाँकर का भी मेरा ऐसा ही अनुभव है। कालाकाँकर में मेरे रहने का स्थान इतना एकान्त में, बस्ती से हटकर था कि मेरे मित्र दो ही दिन में वहाँ के एकाकीपन से ऊबकर मुझसे प्राय: पूछा करते थे कि मैं जंगल के भीतर ऐसी निर्जन सुनसान जगह में अकेली कुटी में कैसे रह लेता हूँ। तब मैं परिहास में उनसे कहता था कि मैं

कुटी के भीतर कहाँ समा सकता हूँ : मैं तो यहीं से विश्व-भर में भ्रमण करता रहता हूँ । सच यह है कि मैं सदैव अपने ही मन में, अपने ही कल्पना-लोक के भीतर रहा हूँ और मेरे कल्पना-जगत् में सदैव इतना जीवन का स्पन्दन रहा है कि मुझे रिक्तता का अनुभव कभी नहीं निगल सका है । मेरा अन्त:करण किसी-न-किसी समस्या से सदैव उलझता रहा है । पर के प्रति, सर्व के प्रति उसका ऐसा स्वाभाविक एवं जन्मजात आकर्षण रहा है कि अपने वाह्य जीवन-सम्बन्धी छोटे-मोटे अभावों की ओर मुड़कर या अपने सुख-दुख में रमकर उसने कभी सोचना ही स्वीकार नहीं किया । सम्भवत: इसीलिए ही अत्यन्त निर्मम परिस्थितियों में भी मुझे कुण्ठा तथा नैराश्य का अनुभव कुचल नहीं सका । गुंजन-काल में अपने पारिवारिक वातावरण से विच्छिन्न हो जाने की छटपटाहट में जब कभी मेरा मन वाह्य जीवन-संघर्ष से विचलित होकर अपने छोटे अस्तित्व की ओर मुड़ा, तब उसने "जग-जीवन की ज्वाला में गल, बन अकलुष उज्ज्वल औ कोमल" अथवा "मैं सीख न पाया अब तक सुख से दु:ख को अपनाना" की ही इच्छा प्रकट की । "विश्व चाहता है मन विश्वास पूर्ण जीवन पर" ... अपने क्षुद्र स्वार्थों की सीमाएं अतिक्रम कर मेरी कल्पना सदैव व्यापक जीवन की पूर्णता के लिए मुझे लाँघती रही है ।"[27]

और इस प्रकार इस व्यापक जीवन की पूर्णता के लिए बहुत-सी प्रत्यक्ष बाधाओं को बिना किसी संघर्ष के लाँघते हुए परोक्ष के अतिचेतन में उलझते-सुलझते हुए पन्त जी इन कविताओं में छायावादी भाव-विह्वलता, प्रगतिवादी विद्रोह, प्रयोगवादी अहम्यन्यता के स्वर को पूरी तरह से तिलांजलि देकर उन्मुक्तता या कहें कि बेलौस खुलेपन में वैदिक ऋचाओं और उनके रचयिता ऋषियों महर्षियों से होते हुए बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रथम दशक तक के विचारों भावों को एकमेक करते हुए अवाक् अकेले ही शान्त भाव

---

27. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध, नवमानवता का स्वप्न, पृ.-48.

से "शुभ आत्मोदय की प्रतीक्षा में खड़े हैं —

नया चाँद निकल आया है
अतल गहराइयों से,
समुद्र से भी अतल गहराइयों से ।
स्वप्न तरी पर बैठा
स्फटिक ज्वाल,
लहरों की साँवली लपटों से घिरा ।

रात की गहराइयाँ
सूरज को निगल जाती हैं;
तभी,
चाँद बन आयी
तुम्हारी स्मृति ।

सभी रत्न नहीं भाते,
विष वासणी
स्फटिक, प्रवाल
सर्प, शंख, —
अमृत स्रोतस्विनी के तट पर
बिखरी पड़ी सृष्टि ।

चाँद भी, —
कलंक न सही, —
उपचेतन गहराइयों का ही
प्रकाश है ।
प्यास नहीं बुझा पाता ।
अचेतन को
नहीं पिघला पाता ।

मन के मौन शृंगों पर
सुनहले क्षितिज
नव सूर्योदय की प्रतीक्षा में है ।

शुभ
अवाक्

आत्मोदय की ।" [28]

(कला और बूढ़ा चाँद की "प्रतीक्षा" कविता)

पन्त जी की नयी कविता के कवियों के सन्दर्भ में राय का भी अपना एक अलग महत्व है । वह मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर आदि की प्रशंसा तो करते हैं किन्तु जिस पक्ष को दिखाते हुए प्रशंसा करते हैं, वह वस्तुत: उनकी ही काव्यगत मन:स्थिति को द्योतित करती है । मुक्तिबोध में वह ऊर्ध्व-चिन्तन की दृष्टि देखते हैं लेकिन साथ ही वह दूसरे पक्षों को नज़रअन्दाज नहीं करते और एक पारखी की तरह मुक्तिबोध की वह मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं । उनके द्वारा मुक्तिबोध में "ऊर्ध्व-चिन्तन की दृष्टि देखने से हम असहमत हो सकते हैं किन्तु दूसरे पक्षों से नहीं ।" वह लिखते हैं कि - मुक्तिबोध, गिरिजा-कुमार माथुर तथा नागार्जुन इस युग के सबसे प्रबुद्ध तथा सफल कवि हैं । मुक्ति-बोध इन सबमें युग-प्रबुद्ध रहे हैं, उनके पास ऊर्ध्व-चिन्तन की दृष्टि भी थी और वह अनेक प्रगतिवादियों की तरह समतल-साधारणता के ही मरुस्थल में नहीं भटक गये । उनकी आस्था सांस्कृतिक तथा सौन्दर्यमूलक थी जिससे उनकी यथार्थवादी दृष्टि में गहराई तथा ऊँचाई आ गयी है ।" ··· वह अराजेय क्रान्तद्रष्टा कवि तथा विचारक थे । ··· मुक्तिबोध में वैचारिक शक्ति, विश्लेषण-बुद्धि तथा दार्शनिक चैतन्य प्राय: समस्त प्रगतिशील कवियों से अधिक विकसित रहे हैं । तरुण होने के कारण उनका काव्य मुख्यत: उच्च-कोटि के आवेश का काव्य है, उसमें प्रौढ़ सन्तुलन की कमी है, पर क्रान्तिदर्शी काव्य की मूल शक्ति जीवन के प्रति समर्थ-आवेश ही में निहित रहती है ।"[28]
गिरिजाकुमार माथुर के सन्दर्भ में वह लिखते हैं कि - "गिरिजाकुमार का काव्यबोध इन कवियों में सबसे अधिक सूक्ष्म तथा विकसित रहा है । वह

28· पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ·-123.

मुक्तिबोध की तरह लम्बी कूँचियाँ ही फेरने में शिल्प-कुशल नहीं है, रूप को निखारकर बारीकी तथा रंग को हलकी-गहरी अनेक इन्द्रियबोध की छायाओं में उपस्थित करने में भी कलादक्ष है। माथुर केवल दृष्टि से यथार्थवादी हैं। संवेदना से वह व्यक्तिवादी ही है। छायावादी अभिव्यंजना को उन्होंने अपने भाषा संगीत के तारल्य में ढालकर नयी कविता के पास पहुँचाने का प्रयत्न किया है।"[29]

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि पन्त जी अपनी बातों में यथार्थवादी अन्तर्दृष्टि या यथार्थ की तलस्पर्शी दृष्टि जीवन की अन्तरंग पकड़ और छायावादी अनुषंग से बिलकुल बाहर होकर इन कवियों का मूल्यांकन करते हुए मूल्यांकन का आधार नहीं बनाते हैं। बावजूद इसके मुक्तिबोध एवं गिरिजाकुमार माथुर के सन्दर्भ में उनकी टिप्पणी बहुत हो सटीक है। वैसे एक दो बातों से हम असहमत हो सकते हैं किन्तु पूरी तरह से नहीं। उनकी सोच में यह बात बराबर बनी रहती है कि उच्च कोटि की काव्य-रचना के लिए कवि की आस्था सांस्कृतिक और सौन्दर्यमूलक भी होनी चाहिए। इसी-लिए पन्त जी ने मार्क्सवाद से जहाँ कहीं आध्यात्मिक समन्वय की बात की है तो इस सन्दर्भ में भारत भूषण अग्रवाल का पन्त जी के सम्बन्ध में कहना है कि - "मार्क्सवाद से आध्यात्मिक समन्वय की बात कहकर पंत ने सामाजिक प्रगति की आवश्यकता से मुँह नहीं मोड़ा था, वरन् वे सामाजिक जीवन के उच्चतर विकास के लिए ही निरन्तर आध्यात्मिक विकास पर जोर देते रहे है। निरे जड़वाद और यंत्रवाद को ही हम जीवन की इतिश्री न समझ बैठें, भौतिक सुख और वैभव में मानवीय सम्बन्धों और भावनाओं के सौन्दर्य से कहीं दृष्टि न फेर लें, यही सोचकर उन्होंने आध्यात्मिक पक्ष पर बल दिया है।"[30]

---

29. पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-6, छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ.-123.
30. कवि की दृष्टि - भारतभूषण अग्रवाल, पृ.-164.

कई लोगों को पन्त जी की बातें परस्पर विरोधी लगती है तथा उनको उनकी बातों को अवैज्ञानिक मानने का एक बहुत बड़ा कारण "परस्पर विरोधी दृष्टियों का समन्वयवाद" दिखायी देता है। वास्तविकता यह है कि यह समन्वयवाद मानव-समाज के प्रति उनकी वायवी सदिच्छा एवं महत्वाकांक्षा का ही परिणाम है। मेरे दृष्टिकोण से भारतभूषण अग्रवाल की बात पन्त जी के सन्दर्भ में भले ही ठीक न लगे किन्तु पन्त जी की दृष्टि से देखने पर यह बिलकुल सटीक लगती है। प्रगतिवादी मूल्यों तथा नयी कविता के प्रति उनके आकर्षण को कई मूर्धन्य आलोचकों ने उनके "अवसरवाद" की संज्ञा दी है। उनका मानववाद भी अपनी एक अलग खासियत रखता है। यह जीवनोन्मुख होकर यथार्थोन्मुखी भी होता है, फिर भी उनकी सदिच्छा, शाश्वत और सार्वभौम की उनकी विशिष्ट सोच से उत्पन्न विशिष्ट खोज ऊर्ध्वोन्मुखी अतिचेतनतावादी दार्शनिकता को छोड़ने के लिए कत्तई तैयार नहीं होती और यदि कहें कि यहीं पर आकर उनके काव्य-विकास की महत्वाकांक्षा को विरामचिह्न लग जाता है या उनकी काव्यगत महत्वाकांक्षा यहीं आकर सीमातीत होते हुए भी सीमा में बँध जाती है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। ध्यातव्य है कि न केवल प्रगतिशील कविता अपितु नयी कविता को भी व्यापक बनाने के लिए वह इतर प्रवृत्तियों से उसके समन्वय पर अपनी सहमति जाहिर करते हैं और वस्तुतः ये इतर प्रवृत्तियाँ "कला और बूढ़ा चाँद" की नयी कविता वाली शैली के अलावा उसके दूसरे पक्षों को शामिल करती हैं। इस दृष्टिकोण से "कला और बूढ़ा चाँद" नयी कविता की ही एक कृति मानी जा सकती है और नयी कविता की एक दूसरी परिभाषा इस कृति को ध्यान में रखकर देने की आवश्यकता नयी कविता के प्रतिष्ठापकों को पन्त जी की सोच के अनुसार देनी पड़ेगी। किन्तु शायद न तो नयी कविता के कवि और न ही उसके प्रतिष्ठापक आलोचक ही पन्त जी की बात को मानने के लिए तैयार होंगे। मैं जहाँ तक समझता हूँ कि यह उनके चौके-चूल्हे की अशुद्धि से

कम आतंककारी नहीं होगा । वस्तुत: रामस्वरूप चतुर्वेदी की बात यहाँ मुझे ज्यादा तर्कसंगत एवं प्रासंगिक लगती है । वह कहते हैं कि - "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं में नयी कविता के कुछ उपकरणों का प्रयोग अवश्य है, पर मूलत: उन्मुक्त अभिव्यक्ति होने के कारण उनमें एक विशिष्ट भावात्मक प्रवाह है । नयी कविता प्रवाह को शायद इस रूप में स्वीकार नहीं करती । उसकी ध्वन्यात्मक व्यवस्था में ठहराव भी महत्वपूर्ण है; उदाहरण के लिए शमशेर की कविताएं ली जा सकती हैं । आगे उन्होंने लिखा है कि - इतना स्पष्ट है कि पंत ने अपने लिए जिस नये माध्यम को चुना है, उसमें वे सफल भी हुए हैं ··· छायावादी कवि द्वारा आज इन अपेक्षाकृत नयी पद्धतियों का सफल प्रयोग उसकी गहरी संकल्पशक्ति को प्रकट करता है ··· पन्त की यह विशेषता है कि उन्होंने कई माध्यमों का अलग-अलग युगों में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है ··· पन्त ने हिन्दी कविता को समृद्ध बनाया है, पहले भी और आज भी ।"[31] अपने इसी लेख में एक स्थान पर और उन्होंने लिखा है कि - प्रस्तुत संकलन में प्रारम्भ से लेकर अंत तक सर्वत्र एक उन्मुक्तता की भावना मिलती है : वैदिक जीवन के आदिम संवेदन जैसी; छायावादी कवि जो सामान्यत: गोपन और रहस्यप्रिय रहा है, इतना उन्मुक्त नयी कविता के तत्वावधान में ही हो सकता था ।[32]

रामस्वरूप चतुर्वेदी की और बातें तो मुझे तर्कसंगत लगती हैं किन्तु उनकी यह बात गले नहीं उतरती कि "नयी कविता के तत्वावधान में पन्त जी इन कविताओं में इतने उन्मुक्त हो सके हैं ।" वस्तुत: तत्वावधान शब्द की जगह यदि समानान्तर शब्द का प्रयोग किया जाय, तो ज्यादा उचित होगा क्योंकि पन्त जी के काव्य-विकास का यह चरण नयी कविता के तत्वावधान में न होकर समानान्तर हुआ है । ऐसा इसलिए कि वह हरेक प्रयोग के चरण

31· रामस्वरूप चतुर्वेदी : कादम्बिनी, जनवरी-1961, पृ·-128-129.
32· वही, पृ·-125.

में अपने ढंग से, अपनी सीमाओं के अनुसार ही भाग लेते रहे हैं। इस प्रकार इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि "कला और बूढ़ा चाँद" और "नयी कविता" किन-किन बिन्दुओं पर एकमेक होती हैं तथा किन-किन बिन्दुओं पर अलग होती हैं।

.....

उपसंहार

पिछले पृष्ठों में मैंने "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं को छायावादी पन्त की कृतियों से लेकर 1958-59 अर्थात् "नयी कविता" तक के बरक्स रखते हुए विवेचन-विश्लेषण किया है। इसके शिल्पगत सौन्दर्य पर विचार करते हुए उन तथ्यों को भी स्पष्ट किया है जिनकी वज़ह से यह काव्य-संग्रह स्मरणीय है। चूंकि युगानुरूप पन्त जी अपने को परिवर्तित करते रहे हैं, इसलिए भी यह जरूरी हो गया कि इस कृति के समय को हिन्दी-काव्यधारा और साथ ही इसके पूर्व की हिन्दी-काव्यधाराओं के परिप्रेक्ष्य में इन कविताओं पर विचार किया जाय। इस शोध-प्रबन्ध की अपनी सीमाएं भी हैं, इसलिए विस्तार के भय से निश्चित मुद्दों को लेकर ही पिछले पृष्ठों में चर्चा की गयी।

पन्त जी कभी भी एक भाव-विशेष और निश्चित शिल्प-विधान से बँधकर कविताएं नहीं करते रहे हैं। इसीलिए कई बातों में यह कृति नयी कविता से जुड़ती है और कई बातों में अलग होती है। एक चीज जो सदैव इन कविताओं में उपस्थित रहती है, वह है - "पन्त जी का निजी कवि-व्यक्तित्व।" यह कवि-व्यक्तित्व उनकी किसी भी कृति में अनुपस्थित नहीं रहता और बार-बार यह भान कराता रहता है कि इन कविताओं को पन्त जी ही लिख रहे हैं और पन्त जी ही लिख सकते हैं। इसीलिए अध्ययन के क्रम में मुझे यह आवश्यक लगा कि "प्रथम अध्याय" में इस कवि-व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाय। वैसे इस काव्य-संग्रह की कविताओं के अध्ययन के क्रम में भी यह बात

सर्वाधिक महत्वपूर्ण लगी कि पन्त के कवि-व्यक्तित्व को जाने बिना इन कविताओं का अध्ययन और विश्लेषण सम्भव नहीं है । यह कहने का कारण है — "इन कविताओं की भाषा का एक अनग सांस्कृतिक रूप" जिसे दूसरे शब्दों में "सांस्कृतिक शब्दावली" नाम से अभिहित किया जा सकता है । यह "सांस्कृतिक शब्दावली" संस्कारित अभिव्यक्ति देती है । इसमें एक तरफ तो इस प्रकार की शब्दावली आती है कि - "ओ, विज्ञान, देह भले ही वायुयान में उड़े, मन अभी ठेले बैल-गाड़ी पर ही खाता है" या "मन का मानव जगे" तो दूसरी तरफ -"तुम ज्ञान नील गवाक्ष से मुझ पर बरसाती रहो" या "चन्द्रमा मेरा यज्ञ-कुण्ड है ।" एक बात और महत्वपूर्ण है । पन्त जी यदि इन कविताओं में नयी अभिव्यक्ति भी करते हैं तो उसको वह इस 'विशिष्ट सांस्कृतिक शब्दावली' से घेर देते हैं जिससे कभी-कभी शब्दों का अर्थ नहीं निकलता है या इसे कहें कि शब्द ही अर्थ भी बन जाते हैं और विशेष ढंग के मौन में अपने अर्थ को व्यंजित करते हैं । इसे यह भी कहा जा सकता है कि यह शब्दों की अर्थानुगत अभिव्यक्ति है या शब्द ही अर्थ भी है । शब्दों का अर्थ जैसे फट (Burst) पड़ता हो । लेकिन यह फट पड़ना शब्दों के संस्कारों के घेरे में ही है ।

इस काव्य-संग्रह के रूप-विधान की यह विशेषता है कि नयी अनुभूति को पुरानी अनुभूति में एकमेक करके अर्थ को व्यापक व गहन बना देता है । इसीलिए कवि को पुरानी दुनियाँ अच्छी लगती है । चारों दिशाओं में नैराश्य के घने कुहासे में वह आशा की किरण अपनी प्राचीन सांस्कृतिक थाती में खोजता है । "जीवन बोध" उसे वहीं मिलता है और वह पुकार कर कह उठता है —

ओ तरुण कवि,
कल के सूर्य,
कुहासों के आरोहों से
बाहर निकल

नये विश्वास का
कनक मंडल क्षितिज
प्रस्तुत करो,
नयी आस्था की
उर्वर भूमि, —
मैं गीतों के
सूप-से पंख फैलाकर
प्रीति ध्वज शोभा प्ररोह
नये प्राण-बीज बोऊँगा, —
जिनके मूल
अनवगाहित
चैतन्य की गहराइयों में
फैलेंगे ।

"कला और बूढ़ा चाँद" की कविताओं का "संवेदनात्मक बोध" पन्त जी की दूसरी कविताओं के संवेदनात्मक बोध से भिन्न है । इसका एक कारण इन कविताओं की दूसरी कविताओं से शैलीगत भिन्नता और सबसे महत्वपूर्ण कारण काव्यगत भावोन्मुक्तता है । वस्तुत: पन्त जी चेतना के जिस धरातल से इन कविताओं की बोधव्य भाषिक ध्वनि को अभिव्यक्ति देते है, उसमें दर्शन, भाव और विचार सब घुले-मिले है । इन कविताओं में प्रयुक्त भाषा के "शाब्दिक सौन्दर्य" को संवेदना की बोध परक स्थिति से ही पहचाना जा सकता है क्योंकि कहीं-कहीं ऐसा लगता है जैसे शब्द स्थिर तो है किन्तु साथ ही उन्मुक्त भी । शब्दों के प्रयोग में कवि ने सहजता और स्वाभाविकता भी दिखायी है जिससे कविताएं बोझिल नहीं हो पाती है । डा॰ केदारनाथ सिंह ने पन्त जी की परवर्ती कविताओं पर विचार करते हुए लिखा है कि - यह बात बार-बार कही गयी है कि पन्त की बाद की कविताओं की भाषा बहुत स्थिर और अमूर्त है । यह बात बिडम्बनापूर्ण लग सकता है कि जो कवि अपने आरम्भिक दौर में सबसे चित्रात्मक और संवेदनशील भाषा का प्रयोग करता था,

वह अपनी बाद की रचनाओं में अमूर्त होता जाय । पर इस स्थिति को उत्तरछायावादी भाषा के प्रति पन्त की उस तीखी प्रतिक्रिया के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए जो उन्होंने "आधुनिक कवि" की भूमिका में व्यक्त की थी । छायावादी कविता की चित्र बोझिल भाषा को "अलंकृत संगीत" कहकर उन्होंने उसकी सीमाओं की ओर सबसे पहले संकेत किया था ।" पुन: आगे लिखा है कि - "पन्त की सृजनात्मक क्षमता को समझने के लिए उनकी प्रति-वर्ष बढ़ती जाती हुई कविता-पुस्तकों की संख्या को नहीं बल्कि उनमें छपी हुई कविताओं के विवेकपूर्ण अध्ययन की जरूरत है ।"[1] इसी संदर्भ में मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि "कला और बूढ़ा चाँद" की कविताएँ भी इसी "विवेकपूर्ण अध्ययन" की हमसे अपेक्षा रखती है । मैं इस चर्चा को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निम्न वक्तव्य से समाप्त करूंगा - "पन्त जी का पूरा काव्य-लोक इस बात का साक्षी है कि वे केवल भावावेग से ही चालित नहीं हुए । मनुष्य को वे परिपूर्ण रूप में देख सके थे । वे कभी भी उस संदेहात्मक स्थिति की अनुशंसा नहीं करते जो मनुष्य को आदिम सहजावस्था में फिरा लेने से बन सकती है । वे बौद्धिक जागरूकता और आत्मचेतना के प्रति बराबर सचेत रहे हैं । उनकी कविताओं में एक प्रकार की जो अनासक्त तटस्थता दिखायी देती है, वह सौन्दर्य के प्रति कठोर आदरभाव के कारण है ।"[2] और सौन्दर्य के प्रति यह कठोर आदरभाव "कला और बूढ़ा चाँद" में भी आद्यन्त विद्यमान है ।

.....

---

1. आलोचना त्रैमासिक - अक्तूबर-दिसम्बर, 1977, सं.- डा. नामवर सिंह. पंत की परवर्ती कविताएँ शीर्षक-लेख, ले. डा. केदारनाथ सिंह, पृ.-9.
2. वही, नयी चेतना का महान गायक चला गया शीर्षक लेख, ले. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.-6.

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों की सूची

1· पन्त ग्रन्थावली, खण्ड-1, खण्ड-2, खण्ड-3, खण्ड-4, खण्ड-5, खण्ड-6. राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1980.

2· साठ वर्ष और अन्य निबन्ध - सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1973.

3· सुमित्रानन्दन पन्त तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परंपरा और नवीनता - ई· चेलिशेव, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1970.

4· पंत : छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व - विद्वान एन·पी· कुट्टन पिल्लै, एम·ओ·एल·, विद्या भास्कर, पारंगत शिक्षण-कला-प्रवीण। जय प्रकाशन, लिंगमपल्ली, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1970.

5· आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरबिन्द दर्शन का प्रभाव - डा· कृष्णा शारदा, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2029 वि·.

6· सुमित्रानन्दन पन्त की भाषा - ऊषा दीक्षित, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983.

7· प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य—अजय तिवारी, परिमल प्रकाशन, अल्लापुर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1984 ई·.

8· छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ - टी·एन· मुरलीकृष्णम्मा। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986.

9· कविता का जीवित संसार - अजित कुमार.

10. नये पुराने झरोखे - डा० हरिवंशराय बच्चन ।

11. कवि पंत - नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रस्तोता, शिवकुमार मिश्र ।

12. कविता के नये प्रतिमान - डा० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन.

13. छायावाद - डा० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन.

14. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डा० नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन.

15. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकान्त वर्मा.

16. नयी कविता में रस और बौद्धिकता - डा० जगदीश गुप्त.

17. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान का विकास - डा० केदारनाथ सिंह । भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

18. सुमित्रानन्दन पन्त - विश्वम्भर मानव, किताब महल, इलाहाबाद, सन् 1951.

19. सुमित्रानन्दन पन्त - डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, सातवाँ संस्करण 1978.

20. ज्योति-विहग - पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण.

21. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध - श्री जयशंकर प्रसाद ।

22. कवि की दृष्टि - भारतभूषण अग्रवाल.

23. पाँच जोड़ बांसुरी - डा० विद्यानिवास मिश्र.

24. हिन्दी साहित्य-कोश, भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड.

25. रूपा - सं० सुमित्रानन्दन पन्त.

26. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-सुमित्रानन्दन पन्त, सं० हरिवंशराय बच्चन, राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली.

27. What is art – Count Leo Tolestoy.
28. पन्त : जीवन और साहित्य - शांति जोशी, राजकमल प्रकाशन.
29. आलोचना - अक्तूबर-दिसम्बर, 1977.
30. कादम्बिनी - जनवरी 1961.
31. धर्मयुग - 19 मई, 1963.
32. कृति : पंत-अंक, 1960.
33. अज्ञेय "नयी कविता" अंक-2, 1955.
34. बदलते परिप्रेक्ष्य - नेमिचन्द्र जैन.
35. नयी कविता सीमाएँ और संभावनाएँ - गिरिजाकुमार माथुर.
36. प्रयोगवादी काव्य-धारा - शम्भुनाथ सिंह.
37. तारापथ - सं. दूधनाथ सिंह "सम्पूर्णता का कवि". लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968.
38. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।
39. शबनम की भूमिका - डा. रामकुमार वर्मा.
40. नागरी प्रचारिणी हीरक जयन्ती ग्रन्थ.
41. "अधखिले फूल" की भूमिका - महादेवी वर्मा.
42. शिल्प और दर्शन - सुमित्रानन्दन पन्त .

.....